उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

सन्देश

अन्तर की अग्निशिखा है शुद्धि की, उन्नति की, प्रबल अभीप्सा और दिव्य इच्छा की अग्निशिखा। यही अग्नि मनुष्य के अन्तर में सदा जलती रहती है। इसके न होने से मनुष्य ऊर्ध्व जीवन की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। इस अग्नि के अस्तित्व को मनुष्य अनुभव करता है, स्पष्ट रूप में देख भी सकता है। जो कुछ मलिन, क्षुद्र या उन्नति-पथ में बाधक है, उस सबको प्रतिक्षण इस अग्निकुण्ड में डाल देना चाहिये। मान लो, तुमसे कोई गलत काम हो गया है, केवल मुंह से पश्चात्ताप करने या दुःख मानने से कोई लाभ न होगा। उसके ऊपर चित्त एकाग्र करके, उसको अन्तर की अग्नि में, होमानल में डाल दो, उसकी आहुति दे दो। इस प्रकार एक ही भूल दो बार कभी नहीं होगी। जो भूल मनुष्य ने एक बार की है उसे दो बार करना उचित नहीं है।

—श्रीमां

मन्त्र का सिद्धान्त

भौतिक जगत् में ध्वनि का महत्त्व होता है

... ध्वनि में हमेशा शक्ति होती है; मनुष्य जितना सोचते हैं उससे बहुत ज्यादा शक्ति। वह अच्छी शक्ति हो सकती है, वह बुरी शक्ति हो सकती है। वह ध्वनि ऐसे स्पन्दन पैदा करती है जिनमें ऐसा प्रभाव होता है जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता। इसमें इतनी विचार की बात नहीं है जितनी ध्वनि की; विचार की अपनी शक्ति होती है, लेकिन वह उसके अपने क्षेत्र में होती है, जब कि ध्वनि की शक्ति भौतिक जगत् में है।

मेरा ख्याल है कि मैं एक बार तुम्हें यह समझा चुकी हूं; उदाहरण के लिए, मैंने तुमसे कहा था कि बिलकुल यूं ही सरसरी तौर पर बोले गये शब्दों का, सामान्यतः बिना सोचे-विचारे, बिना कोई महत्त्व दिये बोले गये शब्दों का भी बहुत भलाई करने के लिए उपयोग किया जा सकता है। मेरा ख्याल है कि मैंने तुमसे "बोंज़ूर" (Bonjour), "सुप्रभात" की बात की थी, कही थी न? जब लोग मिलते और "बोंज़ूर" कहते हैं, तो यह यान्त्रिक रूप से और बिना सोचे होता है। लेकिन अगर तुम उसमें इस इच्छा को रखो, किसी के लिए शुभ दिन की कामना करते हुए अभीप्सा रखो, हां, "सुप्रभात" कहने का एक तरीका होता है जो बहुत प्रभावशाली होता है, उस अवस्था से बहुत ज्यादा प्रभावशाली जिसमें तुम किसी से मिल कर कुछ कहे बिना मन में यह सोचो : "ओह, मैं चाहता हूं कि इसके लिए अच्छा दिन हो।" अगर अपने विचार में इस आशा के साथ एक विशेष ढंग से "सुदिन" कहो, तो तुम उसे अधिक ठोस और प्रभावशाली बना सकते हो।

हां तो, शाप के साथ, या लोगों को गुस्से में कही गयी बुरी बातों के साथ भी ऐसा ही है। इससे तुम उन्हें थप्पड़ लगाने के जितना ही—शायद उससे भी ज्यादा—नुकसान पहुंचा सकते हो। बहुत संवेदनशील लोगों में इसके कारण पेट खराब हो जाता है या उनके दिल में धुकधुकी होने लगती है, क्योंकि तुम अपने शब्दों में कोई अशुभ शक्ति डाल देते हो जिसमें विनाश की क्षमता होती है।

बोलना बिलकुल प्रभावहीन नहीं होता। स्वाभाविक है कि यह बहुत

कुछ हर एक की आन्तरिक शक्ति पर निर्भर करता है। जिन लोगों में बल नहीं है और चेतना नहीं है वे तब तक कुछ नहीं कर सकते जब तक कि भौतिक साधनों का उपयोग न करें। लेकिन जिस हद तक तुम मजबूत हो, विशेषकर जब तुम्हारा प्राण सबल हो तो तुम जो कुछ कहो उस पर तुम्हारा बहुत संयम होना चाहिये, अन्यथा तुम बिना चाहे, बिना जाने, अज्ञान द्वारा बहुत नुकसान पहुंचा सकते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ३८०-८१

शब्दों की शक्ति तीन अलग स्रोतों से आती है

यह मुझे निरर्थक प्रतीत होता है कि मैं आपका ध्यान उन बहुत-से अनुपयोगी शब्दों की ओर खींचूं जिन्हें हम प्रतिदिन उच्चारित करते रहते हैं। इस दोष को स्वीकार सभी लोग करते हैं, परन्तु इसका उपाय कम लोग ही सोचते हैं।

इनके अतिरिक्त, और भी बहुत-से शब्द हैं जिन्हें हम अनुपयोगी तरीके से बरतते हैं। अथवा यूं कहिये कि दिन में बहुत बार कोई शब्द बोलते हुए हमें एक लाभदायक भावना को अभिव्यक्त करने का अवसर मिलता है, बशर्ते हमें यह पता हो कि उन अवस्थाओं में शब्द के पीछे क्या भाव रखना चाहिये।

परन्तु कितनी ही बार हम अपने मिलने वालों के चारों ओर एक हितकारी मानसिक वातावरण उत्पन्न करने का ऐसा अवसर खो बैठते हैं। इस उपेक्षा का प्रतिकार करना अत्यन्त हितकर होगा।

इसे करने के लिए हमें अपनी मानसिकता को उस अनिश्चित और निष्क्रिय अयथार्थता में निवास करने से रोकना होगा जो अधिकतर मनुष्यों में प्रायः हमेशा ही बनी रहती है।

इस अर्धचेतन अवस्था से उत्तरोत्तर स्वास्थ्य-लाभ करने के लिए हमें अवश्य ही, किसी शब्द को उच्चारित करते हुए उसके यथार्थ भाव पर एवं वास्तविक क्षेत्र पर विचार करना चाहिये। इससे हम उस शब्द को पूरी तरह प्रभावशाली बना सकेंगे।

इस सम्बन्ध में हम कह सकते हैं कि शब्दों की क्रिया-शक्ति तीन विभिन्न कारणों पर निर्भर होती है। पहले दो कारण तो स्वयं शब्द में ही

निहित होते हैं जिससे वह शक्ति का सञ्चायक (शक्ति का सञ्चय करने वाला यन्त्र) बन जाता है। तीसरा, शब्द प्रयुक्त करते समय उसके गभीर भाव को सर्वांगीण रूप में अनुभव करना होता है। स्वभावतः, यदि प्रभावशालिता के ये तीनों कारण इकट्ठे मौजूद हों तो शब्द की शक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है।

(१) कुछ ऐसे शब्द होते हैं जिनकी ध्वनि भौतिक जगत् में उनके भाव के अपने निजी जगत् के सूक्ष्म स्पन्दन का ठीक स्थूलीकृत पूर्ण स्पन्दन होती है।

ध्वनि और भाव के साम्य को थोड़ा और पास से देखने पर हमें कुछ ऐसे मूल शब्द मिलेंगे जो अधिकतम व्यापक विचारों को अभिव्यक्त करते हैं और जो अधिकतर बोलने वाली भाषाओं में लगभग एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। (हमें भाषा के इस उद्गम को लिखित भाषाओं के उद्गम के साथ मिला नहीं देना चाहिये, क्योंकि इन भाषाओं का स्वरूप एकदम ही अलग है और ये कुछ दूसरी ही आवश्यकताओं को पूरा करती हैं।)

(२) कुछ और शब्द हैं जो शताब्दियों से विशेष परिस्थितियों में दोहराये जाते रहे हैं और जो उन सबकी मानसिक शक्तियों से, जो उनका उच्चारण कर रहे हैं, भरपूर हो गये हैं।

ये शक्ति के सच्चे सञ्चायक बन गये हैं।

(३) अन्त में, फिर वे शब्द हैं जो बोलने के समय बोलने वाले के जीवन्त भाव से तत्काल एक महत्त्व प्राप्त कर लेते हैं।

मैं जो ऊपर कह चुकी हूं, उसके दृष्टान्त के रूप में मैं एक शब्द प्रस्तुत करती हूं। इसमें तीनों प्रकार के गुण मौजूद हैं और यह है संस्कृत का शब्द "ओ३म्"।

इसे भारत में दिव्य उपस्थिति को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यह प्रत्येक ध्यान, प्रत्येक चिन्तन और प्रत्येक योगाभ्यास से सम्बद्ध होता है।

जैसे "ओ३म्" शब्द की ध्वनि शान्ति, सौम्यता और शाश्वतता के भाव को जाग्रत् करती है वैसे अन्य कोई ध्वनि नहीं करती।

फिर इस शब्द में, इसका प्रयोग करने वालों की, इसके भाव से सम्बन्धित, शताब्दियों की एकत्रीभूत मानसिक भावनाएं पूरी तरह से भर

गयी हैं, विशेषकर हिन्दुओं के लिए, क्योंकि यह शब्द "ओ३म्" जिस भागवत "सारतत्त्व" का आह्वान करता है उसके साथ व्यक्ति का सम्बन्ध स्थापित करने की इसमें सच्ची शक्ति होती है।

और क्योंकि पूर्व के लोग धार्मिक भाव वाले होते हैं और उन्हें चिन्तन-मनन का अभ्यास होता है, उनमें कम ही ऐसे हैं जो इसकी प्रभावकारिता के लिए आवश्यक विश्वास के बिना इसे उच्चारित करते हों। चीन में समान लाभ एक और शब्द से प्राप्त किया जाता है जिसका अर्थ एकदम वही है और जिसकी ध्वनि भी "ओ३म्" शब्द से मिलती-जुलती है। यह शब्द है "ताओ"।

हमारी पश्चिमी भाषाएं उतनी अभिव्यञ्जक नहीं हैं, ये अपने वर्तमान स्वरूप में उस मूल भाषा से, जिसने इन्हें जन्म दिया था, बहुत दूर हट गयी हैं। परन्तु हम सदा ही अपने सजीव और सक्रिय भाव की शक्ति से अपने शब्द को जीवन्त बना सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, कुछ ऐसे सूत्र हैं जिन्हें हम अपने वर्तमान प्रचलित सूत्रों में लाभदायक रूप से जोड़ सकते हैं।

ये सूत्र कई प्राचीन सम्प्रदायों में दीक्षा देते समय बरते जाते थे। इनका अभिवादन के शब्दों के रूप में प्रयोग किया जाता था और उन लोगों की जबान पर, जो इन पर विचार करना जानते थे, ये विशेष प्रभावपूर्ण तथा फलोत्पादक हो जाते थे। ऐसे शिष्यों से, यानी, मार्ग पर पहले पग रखने वाले नवदीक्षितों से कहा जाता था : "तुम्हें समता की शान्ति प्राप्त हो।"

उन्हें, जो अपनी गभीर एवं अनवरत शुभेच्छा को अपने सतत विकसन-शील आन्तरिक तथा बाह्य मनोभाव से प्रमाणित कर देते थे, कहा जाता था : "तुम्हारा उच्चतम कल्याण हो।"

और कुछ गुरुओं के दृष्टान्त में, जिन्हें विशेष उच्च शक्तियां प्राप्त होती थीं, यह शब्द रोगशमन करने के समान कई वास्तविक सिद्धियां भी प्रदान करने की सामर्थ्य रखता था।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. ७५-७७

शब्द का मूल स्रोत

'शब्द'—इसका अर्थ उच्चारित शब्द और वाणी नहीं है। कुछ पुरानी

परम्पराएं कहती हैं : "प्रकाश हो जाये और प्रकाश हो गया।" यहां 'शब्द' एक 'मन्त्र' है। किन्तु यह बिलकुल असाधारण वस्तु है, यह ध्वनि का प्रयोग तभी करता है जब आत्मा में सुगठित संकल्प-शक्ति नीचे, जड़-पदार्थ में उतरना और उस पर सीधा कार्य करना चाहती है—वह शब्द का ही नहीं, ध्वनि का, ध्वनि के स्पन्दन का भी प्रयोग करती है—वह स्वयं जड़-पदार्थ पर और जड़-पदार्थ में कार्य करने के लिए ऐसा करती है। यह एक विपरीत क्रिया है। तुम शब्दों में सूत्रबद्ध विचार के क्षेत्र में हो, फिर वहां से तुम अधिक ऊंचा उठ सकते हो और नीरव विचार की अभिव्यक्ति पा सकते हो; इसके बाद उससे भी ऊपर, और अधिक ऊपर ऊंचा उठ कर तुम 'शक्ति' को प्राप्त कर सकते हो : 'शक्ति' ही वह 'चेतना' है जो विचार का मूल स्रोत है। तब तो यह किसी सूत्रबद्ध,—अभिव्यक्त एवं सूत्रबद्ध —वस्तु की जगह समग्र चेतना बन जाती है। दूसरे शब्दों में, तुम ऊपर उठ कर ठीक मूल स्रोत पर पहुंच जाते हो। वहां से, एक बार जब तुम स्वयं इस प्रकाश को, स्वयं उस चेतना को पा लो और किसी परिणाम तक पहुंचने के लिए जड़-पदार्थ पर कार्य करना चाहो, तो यह संकल्प एक स्तर से दूसरे स्तर तक उतरता है, और जैसे-जैसे यह अधिकाधिक ठोस रूप धारण करता जाता है, वैसे-वैसे अपने-आपको शब्दों में, यहां तक कि एक शब्द में ही स्पष्टतया निरूपित करता है, और जब यह जड़-पदार्थ का स्पर्श करता है, तो एक नीरव शब्द रहने के स्थान पर, ध्वनियों द्वारा उच्चारित शब्द बन जाता है : एक ऐसा स्पन्दन जो जड़-पदार्थ पर सीधा कार्य करेगा। किन्तु इससे पहले व्यक्ति को सीधा ऊपर उठना होगा ताकि वह दुबारा नीचे आ सके। इससे पहले कि वह नीचे आकर यह कार्य कर सके, उसे नीरव चेतना तक पहुंचना होगा। इसे ऊपर से ही आना होगा, इस शब्द का स्रोत ऊपर ही होगा, किसी मध्यवर्ती क्षेत्र में नहीं। हां, तो यही वह 'शब्द' है। पर तुम्हें वैसा ही करना होगा जैसा कि मैंने कहा है —यह कोई सरल बात नहीं है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ११२-१३

शब्द की गुप्त शक्ति

प्राचीन वैदिक सिद्धान्त तथा अभ्यास ने 'मन्त्र' के द्वारा वाणी को

जामा पहनाया। मन्त्र का सिद्धान्त यह है कि इसमें उस शब्द की शक्ति होती है जो हमारी अन्तरतम सत्ता की उन गहराइयों से उठता है जहां वह मानसिक चेतना या बुद्धि से नहीं बल्कि हृदय की गभीर चेतना में मनन-चिन्तन द्वारा पहले तैयार किया जाता है, फिर ऊपर मन में उसे धारण किया जाता है, वहां से वह मन्त्र जाग्रत् मानसिक चेतना में उतरता है और फिर उसे नीरव या शाब्दिक रूप में बाहर लाया जाता है—शायद नीरव शब्द उच्चारित शब्द से अधिक शक्तिशाली होता है—सृष्टि के कार्य के लिए वह उपयुक्त होता है। मन्त्र हमारे अन्दर नयी अवस्थाएं पैदा कर सकता है, हमारी चैत्य सत्ता में बदलाव ला सकता है, जो ज्ञान और जो क्षमताएं हमें पहले प्राप्त नहीं थीं, उन्हें हमें प्रदान कर सकता है; इतना ही नहीं, जब हम किसी मन्त्र का उच्चारण करते हैं तो न केवल दूसरों के मन में भी उस ध्वनि के प्रभावी स्पन्दन पैदा कर सकते हैं बल्कि मानसिक तथा प्राणिक वातावरण में भी ऐसे स्पन्दन ला सकते हैं जो क्रियाओं में भी उतर सकते हैं, यानी पार्थिव स्तर पर उतर कर भौतिक चीजों पर क्रिया कर सकते हैं।

सचमुच, सामान्य तौर पर, हम अपने दैनिक जीवन में प्रतिपल, प्रति घण्टे जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं उनसे विचारों के ऐसे स्पन्दन, विचारों के ऐसे आकार उत्पन्न करते हैं जो दूसरों पर, स्वयं हम पर अपना पूरा प्रभाव डालते हैं। इसीलिए हमेशा सकारात्मक विचारों को पोसने को कहा जाता है।

मनुष्य मनुष्य के साथ मूक रूप से और शब्दों के साथ व्यवहार करता है और साथ ही वह बाकी सारी प्रकृति पर भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में क्रिया करता है, लेकिन चूंकि मनुष्य जगत् के केवल बाहरी रूपों और घटनाओं में इतने इलझे और तल्लीन रहते हैं कि भौतिक सतह से नीचे सूक्ष्म तथा अभौतिक स्तरों पर की प्रक्रिया को जांचने का कष्ट नहीं उठाते और इस तरह इन चीजों के पीछे के विज्ञान से अनभिज्ञ रहते हैं।

हर शब्द में एक शक्ति होती है। वैदिक मन्त्र शब्द के पीछे की इस गुप्त शक्ति का ज्ञान रखता है, और अगर हम यह स्वीकार कर लें कि हर आकार के पीछे एक ऐसा रचनात्मक स्पन्दन होता है जो उसे थामे रखता है तो हम धीरे-धीरे मौलिक रचनात्मक परम शब्द तक पहुंच सकते हैं।

और यह भी सच है कि अगर हम ध्वनि के स्पन्दनों का सचेतन रूप से उपयोग करना जानें तो वे ध्वनियां पृथ्वी के रूपों और आकारों पर प्रभाव डाल कर उनमें सचेतनता भर सकती हैं। इसी कारण ध्वनियों का, विशेष रूप से मन्त्रों का इतना महत्त्व होता है और वे अपने अन्दर गुप्त शक्ति धारण किये रहते हैं।

CWSA खण्ड १८, पृ. ३०-३२

हमेशा श्रीमां को टेर लगाओ

हमेशा श्रीमां को टेर लगाना ही सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है और इसके साथ-साथ प्रकाश की अभीप्सा करना और जब वह आये तो उसे स्वीकार कर लेना, अपने-आपको कामना और किसी भी अन्धकारमयी गति से अलग करके उसका पूरी तरह से त्याग कर देना चाहिये। लेकिन अगर तुम इन दूसरी चीजों को सफलतापूर्वक न भी कर सको फिर भी गुहार लगाना बन्द न करो, मां को पुकारते चलो, पुकारते चलो।

CWSA खण्ड ३१, पृ. १३४

जब संकट आये तो श्रीमां को बारम्बार पुकारना ही सबसे पहली चीज है जिसे करना चाहिये, यह नामजप व्यापक सुरक्षा को तुरन्त प्रभावकारी बना देता है।

योग है भगवान् के साथ सायुज्य, साधना है भगवान् के साथ एक होने के लिए तुम जिस पथ का अनुसरण करते हो। तुम्हें सामान्य मानव चेतना से हट कर भागवत परम चेतना के साथ सम्पर्क साधना होगा।

और इसके लिए हमेशा श्रीमां को टेर लगाओ, अपने-आपको उनके प्रति खोलो, यह अभीप्सा और प्रार्थना करो कि उनकी शक्ति तुम्हारे अन्दर कार्य करे ताकि तुम उनके उपयुक्त यन्त्र बन सको—प्राण तथा मन की लोभ-लालसा, विक्षोभ-चञ्चलता को त्याग दो। ध्यान का अर्थ है कि तुम मन तथा प्राण को अचञ्चल बनाओ तथा श्रीमां की शान्ति, मां की उपस्थिति, उनके प्रकाश, शक्ति तथा आनन्द को पाने की अभीप्सा में निरत रहो।

CWSA खण्ड ३२, पृ. ३०८, १३५

मन्त्र का अभ्यास करना

हर एक को अपना मन्त्र स्वयं खोजना चाहिये

... हर एक को कुछ ऐसा खोजना चाहिये जो व्यक्तिगत रूप से स्वयं उस पर क्रिया करे। मैं केवल भौतिक स्तर पर होने वाली क्रिया की बात कर रही हूं, क्योंकि मानसिक तथा प्राणिक स्तर पर तथा सत्ता के अन्य सभी आन्तरिक भागों में अभीप्सा हमेशा, हमेशा सहज होती है। यहां मैं केवल भौतिक स्तर की बात कर रही हूं।

ऐसा लगता है कि भौतिक स्तर दोहराव के प्रति ज्यादा खुला होता है, यानी जिस चीज को हम बार-बार दोहराते रहते हैं उसे वह आसानी से आत्मसात् कर लेता है—उदाहरण के लिए, यहां हम जो संगीत हर इतवार को बजाते हैं उसमें सम्मिलित मन्त्रों के तीन पद हैं। पहले पद में चण्डी —वैश्व माता के प्रति सम्बोधन है :

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।

दूसरे में श्रीअरविन्द को सम्बोधित किया गया है (और उस पद में उन्होंने मेरा नाम भी जोड़ दिया है)। इसमें वह मन्त्र सम्मिलित है जिसकी मैं चर्चा कर रही थी :

ॐ नमो नमः श्रीमीराम्बिकायै ॐ नमो भगवते श्रीअरविन्दाय ॐ नमो नमः श्रीमीराम्बिकायै।

और तीसरा श्रीअरविन्द को सम्बोधित है : 'आप ही मेरी शरण हैं।'

श्रीअरविन्दः शरणं मम।

तो ये तीन मन्त्र हैं, सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि तुम इनका उपयोग किस प्रकार करना चाहते हो। मैं तो छोटे मन्त्र का अनुमोदन करती हूं, विशेषकर अगर तुम मन्त्र का जाप सहज रूप से निरन्तर करते रहना चाहते हो—एक या दो शब्द हों, ज्यादा से ज्यादा तीन। क्योंकि तुम्हें मन्त्रों का प्रयोग हर अवस्था में कर सकना चाहिये। उदाहरण के रूप में, कोई दुर्घटना होने जा रही है तो मन्त्र बिना सोचे, बिना उसका आह्वान

किये, स्वतः फूट निकलना चाहिये : इसे सहज क्रिया, सचमुच सहज प्रतिक्रिया के रूप में फौरन हृदय से उछल पड़ना चाहिये। तब मन्त्र सचमुच पूरी तरह से शक्तिशाली होता है।

मेरे लिए उन दिनों में, जब मैं विशेष रूप से व्यस्त नहीं होती हूं या कठिनाइयां मुंह बाये नहीं खड़ी होतीं (वे दिन जिन्हें मैं सामान्य दिन कह सकती हूं), तब मैं जो कुछ करती हूं, शरीर की जो भी गतियां करती हूं, सब, सब कुछ, वे शब्द जिन्हें मैं उच्चारित करती हूं, उन सभी, सभी के साथ ये पंक्तियां पृष्ठभूमि में चलती रहती हैं, यह मन्त्र मेरी प्रत्येक क्रिया को धारण किये रहता है : **ॐ नमो भगवते... ॐ नमो भगवते...** सारे, सारे समय, सारे समय, सारे समय। यही मेरी सामान्य अवस्था है। यह मन्त्र तीव्रता का एक ऐसा वातावरण उत्पन्न करता है जो सूक्ष्म भौतिक से भी अधिक भौतिक होता है; यह मानों... फ़ॉस्फ़ोरस की दीप्ति लिये होता है। यह महान् क्रिया करता है, सचमुच बहुत महान् : मन्त्र तुम्हें दुर्घटनाओं से बचा सकता है। और यह सारे समय, सारे समय तुम्हारे संग रहता है। ... तो अगर तुम्हें आवश्यकता महसूस हो—यहां नहीं, तुम्हारे सिर में नहीं, बल्कि यहां (श्रीमां हृदय-केन्द्र की ओर इशारा करती हैं), वह आयेगा। एक दिन, या तो तुम किन्हीं शब्दों को सुनोगे या उपयुक्त शब्द तुम्हारे हृदय से फूट पड़ेगा... और जब ऐसा हो तो तुम्हें उन शब्दों को अपने हृदय से एकदम चिपका लेना चाहिये।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप : १६ सितम्बर १९५८

मन्त्र को अन्दर से सहज फूट पड़ना चाहिये

कोई तुम्हें सच्चा मन्त्र नहीं दे सकता। यह कोई ऐसी चीज नहीं है जो दी जाती है : यह तो ऐसी चीज है जो तुम्हारे अन्दर से फूट पड़ती है। इसे अचानक, सहज रूप से, तुम्हारी सत्ता की गभीर, तीव्र आवश्यकता के रूप में ऊपर उछल कर उठ आना चाहिये—तब इसके अन्दर शक्ति होती है, क्योंकि यह कोई ऐसी चीज नहीं होती जो बाहर से आयी हो, यह तो स्वयं तुम्हारे अन्तरतम हृदय की गुहार होती है।

मैंने अपने मामले में देखा है कि उसमें शाश्वतता की शक्ति होती है; कुछ भी क्यों न हो, अगर मन्त्र का उच्चारण किया जाये तो भगवान् का

वरद हस्त ऊपर उठ आता है और तब दुनिया का निम्नतर विधान क्रिया नहीं करता। और शब्द कुछ भी हो सकते हैं—हो सकता है कि किसी और के लिए उन शब्दों का कोई अर्थ न हो, मेरा मन्त्र तुम्हारे लिए अर्थहीन हो सकता है, लेकिन मेरे लिए वह सघन, सार्थक होता है। और होता है प्रभावकारी, क्योंकि यह मेरी गुहार, मेरी टेर—मेरी सारी सत्ता की तीव्र अभीप्सा है।

मन्त्र की शक्ति

गुरु के द्वारा दिया मन्त्र वह शक्ति लिये होता है कि मन्त्र का आविष्कारक मन्त्र के अन्दर की अनुभूति को सिद्ध कर ले। वह शक्ति मन्त्र में सहज रूप से होती है क्योंकि ध्वनि अनुभूति को अपने अन्दर धारण किये रहती है। इस तरह का अनुभव मुझे एक बार पैरिस में हुआ था, और उस समय हुआ जब मैं भारत के बारे में कुछ नहीं जानती थी, एकदम से कुछ नहीं, बस वे सामान्य अनर्गल बातें ही सुनी थीं मैंने। मैं तो यह भी नहीं जानती थी कि मन्त्र क्या होता है। मैं एक भाषण में गयी जहां भाषणकर्ता ने एक वर्ष हिमालय में रह कर "योग" का अभ्यास किया था, वह अपने अनुभव सुना रहा था (यद्यपि वह बहुत दिलचस्प नहीं था)। और भाषण के दौरान अचानक उसने ॐ शब्द का उच्चारण किया। और मैंने देखा कि अकस्मात् सारा कमरा एक प्रकाश, सुनहरे प्रकाश, स्पन्दनशील प्रकाश से भर गया।... शायद मैं अकेली थी जिसने इसका अनुभव किया। मैंने अपने-आपसे कहा, "वाह!" फिर मैंने इस पर कोई विचार नहीं किया, मैं इसके बारे में भूल गयी। लेकिन जैसा कि बाद में घटित हुआ, यह अनुभूति दो-तीन भिन्न देशों में, भिन्न लोगों के साथ हुई, और हर बार जब ॐ शब्द को उच्चारित किया गया, मैं अचानक उसी जैसे प्रकाश से सारा कमरा भरा हुआ देखती। तब मैं समझ गयी। वह शब्द हजारों-हजारों वर्षों की आध्यात्मिक अभीप्सा का स्पन्दन अपने अन्दर लिये हुए है—इस शब्द के अन्दर परम के प्रति मनुष्य की समस्त अभीप्सा रहती है। और ॐ के अन्दर यह शक्ति सहज-स्वाभाविक रूप से होती है क्योंकि उसमें अनुभूति समायी हुई है।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप : ११ सितम्बर १९६३

लेकिन यह कैसी बात है कि मन्त्र में सहज-स्वाभाविक रूप से अनुभूति की शक्ति समायी होती है, हमेशा तो यह कहा जाता है कि जब तक तुम्हारे गुरु तुम्हें मन्त्र "प्रदान" न करें, उसमें कोई शक्ति नहीं होती?

वह तब, जब स्वभावतः तुम्हारे अन्दर अपनी कोई शक्ति न हो! उदाहरण के लिए, अगर कोई मुझसे आकर कोई मन्त्र मांगे तो मैं उससे यह न कहूंगी कि वह अपने अन्दर से स्वयं अपना मन्त्र ढूंढ़ निकाले।...

जो मैंने कहा वह उन लोगों पर लागू होता है जो अपनी अन्तरात्मा के सम्पर्क में हैं। लेकिन जिनका अपनी अन्तरात्मा के साथ कोई सचेतन सम्पर्क नहीं होता, वे अपना मन्त्र नहीं खोज सकते—उनका मष्तिष्क शब्दों की खोज करेगा, लेकिन वह व्यर्थ होगी। मैंने कहा कि मन्त्र को अन्दर से फूट निकलना चाहिये—लेकिन उनके लिए कोई चीज फूट नहीं निकलेगी! उन्हें वह नहीं मिलेगा, वे उसे नहीं खोज पायेंगे, ऐसा अवसर उनके हाथ लगेगा ही नहीं! तो ऐसे मामलों में गुरु अपनी शक्ति उन्हें प्रदान करते हैं।

जी, लेकिन उदाहरण के लिए, जब कभी हम किसी पुस्तक में कोई मन्त्र पढ़ते हैं तो कहा जाता है कि उसमें कोई शक्ति नहीं होती—ऐसा कैसे होता है, क्योंकि स्पन्दन तो उसमें होता ही है?

लेकिन अगर तुम्हारे अपने अन्दर शक्ति है और तुम पुस्तक पढ़ो तो तुम्हें शक्ति प्राप्त हो जायेगी! (*श्रीमां हंसती हैं*) आवश्यकता होती है अनुभव करने की क्षमता की और सम्पर्क साधने की।

अन्ततः, गुरु क्या करते हैं? वे तुम्हें जोड़ देते हैं (*जोड़ने की मुद्रा*), वे और कुछ नहीं बस कड़ी होते हैं। वे वह शक्ति नहीं देते जो उनकी "अपनी" होती है (वे यह सोचते हैं, लेकिन बात सच नहीं है) : वे कड़ी होते हैं। गुरु 'शक्ति' के साथ तुम्हारा सम्पर्क जोड़ देते हैं—ऐसा सम्पर्क जो उनके बिना तुम्हें नहीं प्राप्त होता। लेकिन जिनके गुरु नहीं होते वे गुरु के बिना सम्पर्क साधते हैं।...

... सिद्धान्ततः गुरु की सच्ची शक्ति होती है—रिक्तस्थानों की पूर्ति करना! व्यक्ति को परम के सम्पर्क में लाना : जब तुम उच्चतर स्तरों पर हो तो तुम्हें उच्चतम स्तरों पर ले जाना। या फिर तुम्हें तुम्हारी अन्तरस्थ अन्तरात्मा, यानी तुम्हारी चैत्य सत्ता के साथ सम्पर्क में लाना, अथवा तुम्हारा 'परम' के साथ नाता जोड़ना—लेकिन यह बहुत लोग नहीं कर सकते।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप : १० जुलाई १९६३

अभीप्सा में निष्कपटता और मन्त्र

अपने-आपमें स्वयं शब्दों का इतना नहीं, बल्कि महत्त्व होता है उसका जिसका वे प्रतिनिधित्व करते और जिसे वे अपने स्पन्दन के साथ लाते हैं ... मेरा मतलब है कि यह कहना, "केवल ये ही 'शब्द' सहायक हैं," एकदम अयथार्थ है।" नहीं, केवल शब्द सहायक नहीं होते, लेकिन वे अपने साथ जिन सूक्ष्म, भौतिक स्पन्दनों को लाते हैं, वे स्पन्दन इन शब्दों का जामा पहन कर जिस अवस्था को तैयार करते हैं और इन शब्दों की उपस्थिति और शाश्वत जीवन की गति के बीच, इस तरंगित स्पन्दन के साथ व्यक्ति का जो नाता जुड़ता है, उसका महत्त्व होता है।...

सामान्य भाषा में कह सकते हैं कि मन्त्र का स्पन्दन शरीर को एक विशेष अवस्था में प्रवेश कराने में सहायक होता है—लेकिन वह विशेष रूप से सबके लिए "वही" समान मन्त्र नहीं होता : वह तो प्रत्येक व्यक्ति का अपना अलग मन्त्र हो सकता है जो उसके शरीर के साथ एक विशेष सम्बन्ध जोड़ देता है (लेकिन उसे होना चाहिये सच्चा मन्त्र, शक्ति से अनुप्राणित मन्त्र)। वह सहज रूप से व्यक्ति के अन्दर पनपने लगता है : जब शरीर चलता है तो वह मन्त्र के इन 'शब्दों' की लय-ताल में कदम बढ़ाता है। और 'शब्दों' की लय-ताल स्वाभाविक रूप से ऐसा विशेष स्पन्दन उत्पन्न करती है जो बदले में एक शान्तिपूर्ण अवस्था को ले आता है।

लेकिन यह कहना कि केवल उच्चारित कुछ शब्द शान्त अवस्था को ले आते हैं, हास्यास्पद होगा। महत्त्व होता है अभीप्सा की सच्चाई का, अभिव्यक्ति और शब्दों में निहित शक्ति की यथार्थता का, यानी, मन्त्र जिस

शक्ति को स्पन्दित करता है उसे मन्त्रोच्चारण करने वाला स्वीकार कर लेता है। यह बहुत रुचिकर चीज है : परमा शक्ति के द्वारा स्वीकृत मन्त्र प्रभावकारी साधन बन जाता है अतः, स्वभावतः उसमें बल और शक्ति का प्रचुर समावेश होता है। हो सकता है कि एक ही मन्त्र किसी व्यक्ति को सीधा दिव्य सिद्धि तक पहुंचा दे तो दूसरे के लिए वह कोई मायने न रखे, वह जैसा का तैसा शुष्क और निरानन्द ही बना रहे।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप : ३१ मई १९६२

कठिनाई में अपने मन्त्र का जाप करो

जब तुम खेल रहे हो और एकाएक ऐसी चीज के विषय में सचेतन हो जाते हो जो गलत हो रही है—तुम भूलें कर रहे होते हो, असावधान होते हो, जो कुछ करते होते हो उसमें कभी-कभी विपरीत गतियां आ घुसती हैं—यदि तुम स्वाभाविक तरीके से इस मुहूर्त में मानों किसी मन्त्र के द्वारा आह्वान करने का, शब्दों को दोहराने का अभ्यास डाल लो तो उसका बड़ा आश्चर्यजनक प्रभाव होता है।

तुम अपना मन्त्र चुनते हो; अथवा यों कहें कि, एक दिन वह अपने-आप किसी कठिन क्षण में तुम्हारे पास आ जाता है। ऐसे समय जब चीजें बहुत कठिन हो जाती हैं, जब तुम्हें एक प्रकार का मानसिक कष्ट, दुश्चिन्ता होती है, जब तुम यह नहीं जानते कि क्या होने जा रहा है, एकाएक यह तुम्हारे अन्दर फूट पड़ता है, शब्द तुम्हारे अन्दर प्रकट हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह अलग-अलग हो सकता है। परन्तु तुम यदि इसे ध्यान में रखो और जब-जब तुम्हारे सम्मुख कोई कठिनाई उपस्थित हो, तब-तब उसे दोहराओ तो यह अदम्य बन जाता है। उदाहरण के लिए, यदि तुम्हें अनुभव हो कि तुम बीमार होने जा रहे हो, यदि तुम अनुभव करो कि जो कुछ तुम कर रहे हो उसे बुरी तरह कर रहे हो, यदि तुम अनुभव करो कि कोई अशुभ वस्तु तुम पर आक्रमण करने जा रही है, तो।... परन्तु यह चीज तुम्हारी सत्ता में सहज रूप से होनी चाहिये, इसे तुम्हारे अन्दर से, इसके बारे में सोचने की आवश्यकता के बिना, फूटना चाहिये। तुम अपना मन्त्र चुनते हो क्योंकि वह तुम्हारी अभीप्सा की एक स्वाभाविक अभिव्यक्ति होता है; यह एक शब्द, दो शब्द या तीन शब्द हो सकते हैं, एक वाक्य हो

सकता है, यह प्रत्येक व्यक्ति पर निर्भर करता है, परन्तु इसे एक ऐसी ध्वनि होना चाहिये जो तुम्हारे अन्दर एक विशेष स्थिति को जाग्रत् कर दे। फिर, जब वह तुम्हें प्राप्त हो जाये तब, मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि तुम बिना कठिनाई के प्रत्येक अवस्था को पार कर सकते हो। यहां तक कि किसी सच्चे, यथार्थ खतरे के आने पर भी, जैसे किसी व्यक्ति के द्वारा आक्रमण होने पर जो तुम्हें मार डालना चाहता है, यदि, उत्तेजित हुए बिना, घबड़ाये बिना, चुपचाप अपने मन्त्र का जप करो तो तुम्हारे विरुद्ध कोई कुछ नहीं कर सकता। स्वभावतः तुम्हें वास्तव में अपने ऊपर प्रभुत्व होना चाहिये; सत्ता का कोई भाग ऐसा नहीं होना चाहिये जो एक पत्ते की तरह कांपता हो; नहीं, तुम्हें इसे पूर्णतः सच्चाई के साथ करना होगा, फिर यह सर्वशक्तिसम्पन्न होगा। सबसे उत्तम होता है जब शब्द अपने-आप तुम्हारे पास आता है। तुम महान् कठिनाई के एक क्षण में (मानसिक, प्राणिक, भौतिक, भावात्मक वह चाहे जो भी हो) पुकारते हो और अचानक वह तुम्हारे अन्दर फूट पड़ता है, दो या तीन शब्द, जादुई शब्दों की तरह। तुम्हें इन शब्दों को याद रखना चाहिये और जिन मुहूर्तों में कठिनाइयां आती हैं उन्हें जपने का अभ्यास डालना चाहिये। यदि तुम यह अभ्यास डाल लो तो वह एक दिन अपने-आप तुम्हारे पास आयेगा : जब कठिनाई आयेगी तो उसके साथ-ही-साथ मन्त्र भी आयेगा। तब तुम देखोगे कि परिणाम अद्‌भुत होते हैं। परन्तु यह कोई कृत्रिम वस्तु नहीं होनी चाहिये अथवा कोई ऐसी चीज नहीं होनी चाहिये जिसे तुम मनमाने ढंग से निश्चित करो : "मैं इन शब्दों का उपयोग करूंगा;" और न किसी दूसरे व्यक्ति को ही तुमसे कहना चाहिये, "ओह! तुम जानते ही हो, यह बहुत अच्छा है"—यह शायद उसके लिए बहुत अच्छा है पर सबके लिए नहीं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ.४०१-०२

सोने से पहले अपना मन्त्र दोहराओ

(अच्छी तरह सोने के लिए) तुम्हें पीठ के बल सीधे लेट जाना चाहिये और अपनी सभी मांसपेशियों और सभी स्नायुओं को ढीला छोड़ देना चाहिये—यह सीखना आसान है—एकदम ऐसा होना चाहिये जिसे मैं बिस्तर पर पड़े लत्ते जैसा होना कहती हूं : और कुछ भी नहीं रहता। और अगर

तुम मन के साथ भी यही कर सको, तो तुम उन सभी मूर्खताभरे सपनों से पिण्ड छुड़ा सकते हो जो तुम्हें जागने पर, बिस्तर पर जाते समय की अपेक्षा ज्यादा थका देते हैं। मस्तिष्क की कोषीय गतिविधि ही बिना नियन्त्रण के निरन्तर चलती रहती है और यह तुम्हें बहुत थका देती है। तो, होनी चाहिये एक पूर्ण शिथिलता, एक तरह की पूर्ण निश्चलता जिसमें कोई तनाव न हो, जिसमें सब कुछ थम जाये।

लेकिन यह तो आरम्भ-मात्र है।

बाद में, तुम यथासम्भव पूर्ण आत्मदान करो, सभी चीजों का, ऊपर से लेकर नीचे तक, बाहर से लेकर अन्दर तक, सबका। और अपने अहं के सारे प्रतिरोध का यथासम्भव पूर्ण रूप से उन्मूलन करो। और बाद में तुम अपना मन्त्र जपना शुरू करो—तुम्हारा अपना मन्त्र, अगर तुम्हारे पास कोई हो तो, या कोई भी शब्द जिसमें तुम्हारे लिए शक्ति हो, ऐसा शब्द जो प्रार्थना की तरह, सहज रूप में हृदय से प्रकट हो, ऐसा शब्द जो तुम्हारी अभीप्सा को समाहित करे। उसे कई बार दोहराने के बाद, अगर तुम अभ्यस्त हो तो समाधि में चले जाओ। और उस समाधि से होकर नींद में प्रवेश करो। समाधि उतनी देर रहती है जितनी देर रहनी चाहिये और फिर सहज, नैसर्गिक रूप से तुम नींद में चले जाते हो। लेकिन इस नींद से जब तुम जगते हो, तो तुम्हें सब कुछ याद रहता है; नींद में भी मानों समाधि ही जारी रही।

मूलतः, नींद का एकमात्र उद्देश्य है शरीर को समाधि के प्रभाव को आत्मसात् करने के योग्य बनाना जिससे कि प्रभाव सभी जगह ग्रहण किया जा सके और शरीर को इस योग्य बनाया जा सके कि वह विष निष्कासन का अपना स्वाभाविक रात का काम कर सके। और इस तरह जब तुम जागते हो तो नींद से आने वाला वह भारीपन लेशमात्र भी नहीं होता : समाधि का प्रभाव जारी रहता है।

उन लोगों के लिए भी जो कभी समाधि में नहीं गये, सोने से पहले कोई मन्त्र या शब्द जपना या प्रार्थना करना अच्छा है। लेकिन शब्दों में जीवन होना चाहिये; मेरा मतलब बौद्धिक अर्थ से नहीं है, उस तरह की किसी चीज से नहीं, बल्कि स्पन्दन से है। और उसका शरीर पर असाधारण प्रभाव होता है : उसमें स्पन्दन आरम्भ हो जाता है, वह स्पन्दित, स्पन्दित,

स्पन्दित होता है... और फिर शान्ति से तुम अपने-आपको छोड़ दो, मानों तुम सोना चाहते हो। शरीर अधिकाधिक स्पन्दित होता है, अधिकाधिक, अधिकाधिक स्पन्दित होता है और तुम दूर चले जाते हो। तमस् का यही उपचार है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ४२०-२१

ध्वनि में शक्ति होती है

स्वयं ध्वनि में बहुत शक्ति होती है, यही जप करने का मेरा प्रधान कारण है। अगर तुम शरीर को समान ध्वनि का बार-बार उच्चारण करने के लिए बाध्य करो तो तुम साथ ही साथ उसमें उस ध्वनि के स्पन्दन भी भरते रहते हो, इसी कारण वे स्पन्दन क्रिया करते हैं। और मैंने देखा है कि अगर मेरे शरीर को कोई चीज विक्षुब्ध कर रही हो (कोई दर्द, या कोई अव्यवस्था या कोई बीमारी अन्दर आने की कोशिश में हो) और अगर मैं अपना मन्त्र एक विशेष तरीके से दोहराऊं—समान शब्दों को, समान मन्त्र को दोहराऊं, लेकिन वे उच्चारित किये गये हों एक विशेष उद्देश्य के लिए और सबसे बढ़ कर, समर्पण की गति के साथ, दुःख-दर्द, अव्यवस्था के समर्पण के साथ—एक आह्वान, एक उद्घाटन के रूप में —तो उसका अद्भुत असर होता है। तब मन्त्र एकदम उचित रूप में क्रिया करता है, एकदम सही रूप में। और कुछ समय बाद शरीर का सन्तुलन वापिस आ जाता है। साथ ही, अव्यवस्था के पीछे के कारण और उसे ठीक करने की पूरी-पूरी यथार्थ जानकारी भी मिल जाती है। लेकिन इन सब चीजों के अलावा, मन्त्र स्वयं पीड़ा पर सीधी क्रिया करता है।

ॐ और मन्त्र का कार्य

ॐ मन्त्र है, यह ब्रह्म-चेतना की तुरीय अवस्था से लेकर बाहरी या भौतिक स्तर के चारों लोकों को अभिव्यक्त करने वाला शब्द-प्रतीक है। किसी भी मन्त्र का कार्य होता है कि वह आन्तरिक चेतना में ऐसे स्पन्दनों यानी प्रकम्पनों को उत्पन्न करे जो चेतना को उस वस्तु की सिद्धि के लिए तैयार करते हैं जिसका प्रतीक वह मन्त्र होता है और उस सिद्धि को वास्तव में वह मन्त्र अपने अन्दर धारण करता है। अतः ॐ मन्त्र को

हमारी चेतना का इस प्रकार उद्‌घाटन करा देना चाहिये कि चेतना सभी भौतिक चीजों में, आन्तरिक सत्ता और अतिभौतिक जगतों में, हमारे लिए जो अभी ऊपर का कारण-लोक है उसमें और अन्त में, समस्त वैश्व अस्तित्व के ऊपर स्थित चरम मुक्त परात्परता में एकमेव 'चेतना' को देख तथा अनुभव कर सके। जो लोग इस मन्त्र का उपयोग करते हैं उनका मुख्य लक्ष्य साधारणतया इस अन्तिम अनुभूति को ही प्राप्त करना होता है।

इस योग में कोई निश्चित मन्त्र नहीं है, मन्त्रों पर कोई बहुत विशेष जोर नहीं दिया जाता, यद्यपि साधक को यदि कोई मन्त्र सहायक प्रतीत हो या जब तक वह सहायक मालूम हो तब तक वह उसका उपयोग कर सकता है। यहां पर बल्कि जोर दिया जाता है चेतना में अभीप्सा रखने पर और मन, हृदय, संकल्प-शक्ति तथा समस्त सत्ता की एकाग्रता पर। अगर कोई मन्त्र इस कार्य के लिए उपयोगी प्रतीत होता है तो साधक उसका उपयोग करता है। ॐ मन्त्र का यदि ठीक-ठीक (यन्त्रवत् नहीं) उपयोग किया जाये तो यह अवश्य ही ऊपर की ओर और बाहर (विश्व-चेतना) की ओर उद्‌घाटित होने और साथ ही ऊपर की चेतना के अवतरित होने में सहायता कर सकता है।

SABCL खण्ड २३, पृ. ७४५-४६

शिष्य—कहते हैं कि ॐ ब्रह्म का प्रतिनिधित्व करता है।

श्रीअरविन्द—हां, ॐ शब्द में महान् शक्ति है—इसका उच्चारण ऐसी ध्वनि-शक्ति उत्पन्न करता है जिसके अन्दर संसार की सभी ध्वनि-शक्तियां समायी हुई हैं; अतः, कहा जाता है कि यह ब्रह्म का प्रतिनिधि है।

शिष्य—शब्दों की ध्वनियों में क्या कोई शक्ति होती है?

श्रीअरविन्द—भला क्यों नहीं होती? क्या स्वयं ध्वनि एक शक्ति नहीं है? अगर ध्वनि भौतिक प्रकम्पन पैदा कर सकती है तो वह समान रूप से आध्यात्मिक प्रभावों को भी उत्पन्न कर सकती है।

प्रभु का नाम-जप मन्त्र की तरह है

सारे समय प्रभु की याद बनाये रखो

गीता मृत्यु के समय की मनोदशा और विचार पर बहुत बल देती है। इस महत्त्व को समझना हमारे लिए बहुत कठिन हो सकता है अगर हम उस चीज को नहीं पहचान पायें जिसे चेतना की स्वतः-सिद्ध सर्जनात्मक शक्ति कहा जा सकता है। यानी उस समय व्यक्ति का विचार, उसकी आन्तरिक दृष्टि, उसकी श्रद्धा जिस किसी बात पर पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो जाती है उसी में हमारी आन्तरिक सत्ता परिवर्तित होने लगती है... इस मर्त्य जगत् से प्रयाण करने के सन्धि-क्षण में हमारी चेतना जिस स्तर को प्राप्त कर लेती है उसका महत्त्व होता है। लेकिन यह मृत्युशैया पर किसी तरह बस भगवान् का नामोच्चारण करना नहीं है जिसका हमारी सम्पूर्ण जीवनधारा और हमारी पूर्वतन मनःस्थिति से कोई मेल ही न हो, यानी अन्तिम समय किसी तरह भगवान् का नाम निकलवा लेने का कोई महत्त्व नहीं होता। इस नामोच्चारण में कोई उद्घाटक शक्ति नहीं होती। यहां *गीता* जो बात बतला रही है वह वह चीज नहीं है जिसे सामान्य लौकिक धर्म मुक्ति का सहज मार्ग समझ कर करते हैं; अर्थात् भले व्यक्ति का सारा जीवन अपवित्रता में बीता हो और फिर भी पादरी के द्वारा अन्त में प्रायश्चित्त करा लेने से ही ईसाई का मरण-काल में पवित्र हो जाना अथवा पवित्र काशीधाम में मरने या पतितपावनी गंगा के तट पर शरीर छोड़ने से ही मुक्ति का मिल जाना इत्यादि जो बेसिर-पैर की बातें हैं उनसे *गीता* की इस बात का कोई मेल नहीं है। मृत्यु के समय मन को जिस दिव्य भाव पर अचल रूप से स्थिर करना—*यं स्मरन् भावं त्यजति अन्ते कलेवरम्*—होता है वह तो वही भाव हो सकता है जिसकी ओर आत्मा अपने सांसारिक जीवन में प्रतिक्षण आगे बढ़ती रही हो—*सदा तद्भावभावितः*। "इसीलिए" प्रभु कुरुक्षेत्र में अर्जुन से कहते हैं कि "सदा मेरा ही स्मरण करते रहो और युद्ध करो; अगर तुम्हारा मन और तुम्हारी बुद्धि सदा ही मुझ पर स्थिर और मुझे ही अर्पित रहेंगे—*मयि अर्पितमनोबुद्धिः*—तो तुम निश्चय ही मेरे पास चले आओगे। क्योंकि सतत रूप से अविचल योगाभ्यास के द्वारा एकचित्त होकर निरन्तर परम पुरुष तथा भगवान् का चिन्तन करने से

व्यक्ति उन्हीं को प्राप्त होता है।"
SABCL खण्ड १३, पृ. २८१-८२

अपना सारा जीवन अविरत योग की तरफ मोड़ो

क्योंकि अन्ततः यही असली बात है—सम्पूर्ण सत्ता को भगवान् के साथ युक्त करना, इतनी पूर्णता के साथ और इस तरह समस्त तरीकों से युक्त हो जाना कि यह ऐक्य स्वाभाविक और सतत हो जाये और सम्पूर्ण जीवन—केवल विचार और ध्यान नहीं—बल्कि कर्म, श्रम, युद्ध सब कुछ भगवान् का ही स्मरण बन जाये। "*मामनुस्मर युद्ध्य च*—मेरा स्मरण करते चलो और युद्ध करो," इसका अर्थ ही यह है कि इस सांसारिक संघर्ष में—जिसमें सामान्यतः हमारे मन डूबे रहते हैं—एक क्षण के लिए भी भगवान् का स्मरण न छूटे; और यह एक ऐसी बात है जो बहुत ही कठिन, प्रायः असम्भव ही प्रतीत होती है।... लेकिन अगर हम स्मरण करने के इस मन्त्र को गांठ में बांध लें तो भगवान् का स्मरण रुक-रुक कर होने वाली कोई विशेष क्रिया नहीं होता बल्कि वह जीवन की सहज अवस्था और चेतना का सारतत्त्व बन जाता है। तब *जीव पुरुषोत्तम* के साथ अपना यथार्थ, स्वाभाविक तथा आध्यात्मिक सम्बन्ध प्राप्त कर लेता है और हमारा सम्पूर्ण जीवन योग बन जाता है—वह योग जो सिद्ध होने पर भी अनन्त काल तक और समृद्धतर रूप से साधित-संवर्धित होता रहेगा।
SABCL खण्ड १३, पृ. २८५-८६

जब तुम्हारे पास थोड़ा समय हो

जब तुम्हारे पास करने को कुछ न हो, ध्यान में चले जाओ और किसी भी मन्त्र का जाप करो, जैसे—"ॐ" या "प्रभु" या "श्रीमां" और अपने हृदय में अन्दर प्रवेश करो और वहां 'प्रभु के हृदय' में आसरा ले लो, वहां दुबक जाओ, क्योंकि 'उनका हृदय' इतना कोमल-नरम, इतना मधुर, इतना अद्‌भुत है...

जब कभी तुम विक्षुब्ध हो उठो, जिस चीज ने तुम्हें विक्षुब्ध बना दिया है उसके अलावा और किसी चीज के बारे में जब तुम कुछ भी नहीं सोच

सकते, तब बस अपने अन्दर चले जाओ और प्रभु को पुकारो। निश्चय ही, तुम तुरन्त सफल नहीं हो जाओगे, लेकिन धीरे-धीरे करके जरूर होओगे।

प्रभु को इन भौतिक आंखों से नहीं देखा जा सकता। तुम्हें पहले प्रभु का अनुभव करना होगा, मानों तुम 'उनके हृदय' में समाये हुए हो। स्वाभाविक है कि इस अनुभव में समय लगेगा।

कई-कई सालों तक प्रयास करने के बाद भी लोग इस अवस्था को नहीं पा सकते... यह कभी न भूलो कि आरम्भ में प्रभु हैं और अन्त में भी प्रभु हैं। यह जगत् प्रभु को बिसरा बैठा है। लोग मूर्ख हैं कि वे भगवान् को भुला बैठे हैं, और यही कारण है कि सभी दुःख-दर्द और परेशानियां निरन्तर उनके पीछे हाथ धोकर पड़ी रहती हैं।

हुता की पुस्तक 'Mother You Said So' से

विरोधी शक्तियों से छुटकारा पाने का सर्वोत्तम तरीका

सभी विरोधी शक्तियों और उनके सुझावों से छुटकारा पाने का सर्वोत्तम तरीका है कि खाते-पीते, सोते-जागते, तुम जो कुछ भी करो, सारे समय निरन्तर भगवान् का नाम लेते रहना, यह कहना : "मैं बस भगवान् को चाहता हूं, और कुछ नहीं चाहता।" जब कभी तुम बीमार पड़ जाओ या कुछ गलत घट जाये तो तुम्हें भगवान् से यह प्रार्थना करनी चाहिये कि वे तुम्हारे रास्ते के उन सभी रोड़ों को हटा दें जो तुम्हें तुम्हारे लक्ष्य तक पहुंचने में बाधा दे रहे हैं। अगर तुम्हारी पुकार पर्याप्त रूप से सच्ची-निष्कपट हो तो तुरन्त सभी बाधाएं गायब हो जायेंगी। अगर तुम सतत रूप से प्रार्थना करने की आदत डाल लो, प्रार्थनाएं सच बन जाती हैं क्योंकि सभी की हृदय-गुहा में सदा ईश्वर वास करते हैं और वे हमेशा सभी सच्ची प्रार्थनाओं को सुनते हैं और सब कुछ देखते हैं।

हुता की पुस्तक 'Mother You Said So' से

भगवान् के नाम की शक्ति

भगवान् के नाम का जप सामान्यतया संरक्षण पाने के लिए, भक्ति बढ़ाने के लिए, आन्तरिक चेतना को उद्घाटित करने के लिए, उस पहलू

में भगवान् को सिद्ध करने के लिए किया जाता है। इसके लिए अवचेतना के अन्दर निरन्तर कार्य चलता रहता है और वह तब तक चलता रहता है जब तक जप की शक्ति उसमें पैठ न जाये।
SABCL खण्ड २३, पृ. ७४६

चाहे जिस किसी नाम को क्यों न पुकारा जाये, जो शक्ति प्रत्युत्तर देती है वह स्वयं श्रीमां हैं। प्रत्येक नाम भगवान् के एक विशेष पक्ष को सूचित करता है और उसी पक्ष से सीमित रहता है; लेकिन श्रीमां की शक्ति सर्वव्यापक और वैश्व है।
SABCL खण्ड २३, पृ. ७४७

नाम-जप में तुमने जिस शक्ति और जिस सुरक्षा का अनुभव किया वैसा अनुभव उस प्रत्येक व्यक्ति ने किया जिसने श्रद्धा और पूरे भरोसे के साथ उसका जाप किया। जो लोग अपने हृदय की गहराई से सुरक्षा के लिए आह्वान करते हैं वे कभी असफल नहीं होते। किसी भी बाहरी परिस्थिति को यह अनुमति न दो कि वह तुम्हारे अन्दर की श्रद्धा को डिगा सके : क्योंकि यह श्रद्धा ही तुम्हें वह महान् शक्ति प्रदान करती है कि तुम सभी परिस्थितियों से होते हुए लक्ष्य तक पहुंच सको। ज्ञान और तपस्या, उनमें चाहे जितनी शक्ति हो, फिर भी उनकी शक्ति श्रद्धा के सम्मुख ओछी ही पड़ती है—श्रद्धा ही मार्ग की सबसे शक्तिशाली लाठी है। तुम्हें चारों ओर से सुरक्षा घेरे हुए है और श्रीमां का प्रेम तुम पर निगरानी रखे हुए है। उस पर भरोसा रखो और अपनी सत्ता को अधिकाधिक उसके प्रति खुला रखो—तब सत्ता सभी प्रहारों को पीछे धकेल देगी और हमेशा तुम्हें थामे रहेगी।

—श्रीअरविन्द

ॐ अविनाशी 'शब्द' है, **ॐ** 'विश्व' है, यही है **ॐ** की व्याख्या। अतीत, वर्तमान तथा भविष्य—वह सब जो था, वह सब जो है, वह सब जो होगा—सब **ॐ** है।

इसी तरह वह सब जो 'समय' की सीमा के परे है, वह भी **ॐ** ही है।
CWSA खण्ड १८, पृ. १९३ —श्रीअरविन्द

जप

जप करने का तरीका

साधारणतया दो अवस्थाओं में से किसी एक में ही जप फल प्रदान करता है : (१) यदि जप अर्थ पर ध्यान रख कर किया जाता है, तब साधक के मन में कोई ऐसी चीज होती है जो उस देवता के स्वभाव, शक्ति, सौन्दर्य, मोहिनी शक्ति पर एकाग्र होती है जिसे जप का मन्त्र व्यक्त करता है और जिसे चेतना के अन्दर ले आना अभिप्रेत होता है। यह मानसिक पद्धति है; अथवा (२) यदि जप हृदय से उठता है या इसे सजीव बनाने वाली एक प्रकार की भक्ति का भाव या बोध मन्त्र को हृदय में झंकृत करता है। यह हृदय की भावप्रधान पद्धति है। इस तरह जप को या तो मन का या प्राण का सहारा या पोषण मिलना ही चाहिये। पर जप से मन यदि शुष्क हो जाये और प्राण चञ्चल हो उठे तो इसका अर्थ है कि उसे यह सहारा और पोषण नहीं मिल रहा है। अवश्य ही एक तीसरी पद्धति भी है, वह है स्वयं मन्त्र या नाम की शक्ति पर निर्भरता। उस अवस्था में साधक को तब तक जप करते रहना होता है जब तक कि वह शक्ति पर्याप्त रूप में आन्तरिक सत्ता पर अपने प्रकम्पनों को प्रतिष्ठित न कर दे जिसमें कि एक सुनिश्चित क्षण में वह एकाएक दिव्य उपस्थिति या दिव्य स्पर्श की ओर उद्घाटित हो जाये। परन्तु इस फल के लिए यदि संघर्ष किया जाये या आग्रह किया जाये तो फिर इस फल के आने में बाधा पड़ती है, क्योंकि इसके आने के लिए यह आवश्यक है कि मन के अन्दर एक प्रकार की अचञ्चल ग्रहणशीलता हो। यही कारण है कि मैंने बार-बार मन की अचञ्चलता पर इतना अधिक जोर दिया था, इस बात पर जोर नहीं दिया था कि इसके लिए अत्यधिक श्रम या प्रयास किया जाये। मेरा उद्देश्य यह था कि चैत्य पुरुष और मन को समय दिया जाये कि वे ग्रहणशीलता की आवश्यक स्थिति को विकसित करें—यह ग्रहणशीलता उतनी ही स्वाभाविक होनी चाहिये जितनी कि वह उस समय होती है जब मनुष्य कविता या संगीत की अन्तःप्रेरणा को ग्रहण करता है। फिर यही कारण है कि मैं नहीं चाहता कि तुम कविता लिखना बन्द कर दो—यह सहायता करती है और तैयारी के कार्य में बाधा नहीं पहुंचाती, क्योंकि यह

ग्रहणशीलता की और आन्तरिक सत्ता में विद्यमान भक्ति को बाहर निकालने की समुचित अवस्था को विकसित करने का साधन है। अपनी सारी शक्ति को जप या ध्यान में खर्च कर देना एक प्रकार का कठिन श्रम है जिसे जारी रखना सफल ध्यान करने के अभ्यस्त व्यक्ति के लिए भी कठिन होता है—जिसे केवल उन समयों में ही जारी रखना सम्भव होता है जब कि ऊपर से अनुभूतियों की अबाध धारा प्रवाहित होती रहती है।

SABCL खण्ड २३, पृ. ७४५ —श्रीअरविन्द

गायत्री मन्त्र का जाप करना

गायत्री की शक्ति है 'भागवत सत्य की ज्योति'। यह ज्ञान का मन्त्र है।

गायत्री मन्त्र सत्ता के सभी लोकों में सत्य की ज्योति को ले आने का मन्त्र है।

*

गायत्री-जप को या जिस पद्धति का अभी तुम अनुसरण कर रहे हो उसको छोड़ने की आवश्यकता नहीं। हृदय में एकाग्र होना एक पद्धति है, सिर में (या ऊपर) एकाग्र होना दूसरी पद्धति है; दोनों को इस योग में शामिल किया गया है और जिस व्यक्ति को जो पद्धति सबसे अधिक आसान या स्वाभाविक प्रतीत हो उसे उसी का अभ्यास करना चाहिये। हृदय में एकाग्र होने का उद्देश्य है वहां के केन्द्र (हृत्पद्म) को उद्घाटित करना, हृदय में भगवती माता की उपस्थिति को अनुभव करना और अपनी अन्तरात्मा या चैत्य पुरुष के विषय में, जो कि भगवान् का अंश है, सचेतन होना। मस्तक में एकाग्र होने का उद्देश्य है भागवत चेतना में ऊपर उठ जाना और सभी चक्रों में श्रीमां की ज्योति या उनकी शक्ति या आनन्द को उतार लाना।

SABCL खण्ड २३, पृ. ७४७ —श्रीअरविन्द

प्रणव जप

ऐसा माना जाता है कि इस (प्रणव जप) में एक अपनी शक्ति है यद्यपि

वह शक्ति उसके अर्थ पर ध्यान किये बिना पूरी तरह कार्य नहीं कर सकती। परन्तु मेरा अनुभव यह है कि इन बातों का कोई अकाट्य नियम नहीं है और सबसे अधिक निर्भर करता है चेतना के ऊपर या साधक की प्रत्युत्तर देने की शक्ति के ऊपर। कुछ लोगों के मामले में इसका कोई फल नहीं होता, और कुछ लोगों के मामले में ध्यान किये बिना भी इसका बहुत शीघ्र और शक्तिशाली फल होता है—दूसरों के लिए कोई फल पाने के लिए ध्यान आवश्यक होता है।

SABCL खण्ड २३, पृ. ७४८

मैंने श्वास के साथ नाम-जप करने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया, क्योंकि वह मुझे प्राणायाम जैसा लगा। प्राणायाम बहुत शक्तिशाली चीज है, पर वह यदि अव्यवस्थित रूप में किया जाये तो उससे बाधाएं खड़ी हो सकती हैं और यहां तक कि कई लोगों के शरीर में रोग भी हो सकते हैं।

SABCL खण्ड २३, पृ. ७४५

श्रीकृष्ण के नाम का जप

श्रीकृष्ण के नाम का जप करने में मैं कोई हानि नहीं देखता, श्रीकृष्ण की सत्ता ने ही तो हमारे प्रभु श्रीअरविन्द का और उनकी पराशक्ति ने मां का रूप धारण किया है।

इसमें कोई हानि नहीं है; इस योग में यह असंगत नहीं है, न ही यह कहा जा सकता है कि यह इस योग के अनुरूप नहीं है।

जप की शक्ति

मन्त्र-जप ऊपर की शक्ति के प्रति चेतना को खोल देता है। मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता कि कोई मन्त्र भौतिक चेतना को बदल सकता है। वह करता यह है कि अगर वह प्रभावी हो तो चेतना को उद्घाटित कर देता है और उस शक्ति को उसमें उतार लाता है जिसका प्रतिनिधित्व वह मन्त्र करता है।

*

अगर मन्त्र का उचित रूप में जप किया जाये तो वह ऊपर से उतरने वाले प्रकाश, ज्ञान इत्यादि के प्रति उद्घाटन का साधन बन जाता है, और जैसे ही कार्य सम्पन्न हो जाता है, वह थम जाता है।

*

यह बहुत अच्छी खबर है कि प्रहार से तुम मुक्त हो गये और जप ने ही इससे छुटकारा दिलाने में तुम्हारी मदद की। यह और पुराना अनुभव भी यह दर्शाता है कि अगर तुम प्राणहीनता और उदासी के साथ जप करने के अपने पुराने तरीके से पिण्ड छुड़ा लो तो वह तुम्हारे अन्दर उचित चेतना को उत्पन्न करने का अपना स्वाभाविक कार्य कर सकेगा —क्योंकि जप का यही उद्देश्य होता है। पहले वह चेतना के स्पन्दनों में परिवर्तन लाता है, उन्हें उचित अवस्था में रखता है और वे उचित प्रत्युत्तर देते हैं, उसके बाद वह 'देवता' की शक्ति तथा उपस्थिति को उसके अन्दर ले आता है। पहले कई बार तुमने मुझे लिखा है कि जप करने से तुम अपने पुराने आवेश से छूट गये और तुमने अचञ्चलता तथा चेतना का उचित मोड़ पा लिया और अब इसने तुम्हारे अन्दर आयी उदासी और निराशा की बाढ़ में डूबने से तुम्हें बचा लिया। आओ हम आशा करें कि यह अन्तिम प्रहार भी जल्दी ही अपना बल खो देगा जैसा कि आवेश के समय हुआ था और सारी सत्ता पर अचञ्चलता और प्रशान्ति स्वयं को प्रतिष्ठित करना आरम्भ कर देंगी।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ८२७-२९ —श्रीअरविन्द

यान्त्रिक जप का भी अवचेतना में असर होता है

लेकिन हम जो सर्वांगीण उपलब्धि प्राप्त करना चाहते हैं, क्या इन मन्त्रों और दैनिक जपों से सचमुच कोई सहायता मिलती है, या ये भी हमें एक घेरे में बन्द कर लेते हैं?

ये हमें अनुशासन सिखलाते हैं। यह इतना विचार का नहीं बल्कि चरित्र का प्रायः अवचेतन अनुशासन होता है।

यह प्रायः भौतिक अनुशासन ही होता है। और मैंने तो यह देखा है कि

जप का अवचेतना पर, निश्चेतना पर, जड़-भौतिक पर, शरीर के कोषाणुओं पर उत्तरोत्तर प्रभाव पड़ता है—हां, इसमें समय लगता है, लेकिन अगर इसे सतत रूप से दृढ़तापूर्वक दोहराया जाये तो कालान्तर में इसका प्रभाव पड़ता ही है। इसके पीछे वही समान सिद्धान्त है कि, उदाहरण के लिए, अगर तुम पिआनो पर रोज अभ्यास करो तो क्रमशः तुम सीखते चलते हो। तुम यान्त्रिक रूप से पिआनो पर समान चीजें बजाते रहते हो और अन्त में तुम्हारे हाथों में वह चेतना भर जाती है—यह चीज शरीर को चेतना से भर देती है।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप : २० सितम्बर १९६०

कीर्तन में जोर-जोर से चिल्लाना कैसे सहायक होता है?

वह इस पर निर्भर करता है कि तुम किस प्रकार की सहायता चाहते हो। अगर तुम भावुक आनन्दातिरेक में प्रवेश करना चाहते हो तो चिल्ला-चिल्ला कर कीर्तन करने की भौतिक उत्तेजना उस अवस्था को पाने में तुम्हारी सहायक होती है। अगर कोई व्यक्ति पूरा सधा हुआ हो तो वह इन तरीकों से आध्यात्मिक अनुभूतियां पा सकता है। लेकिन सामान्यतया ये प्राणिक गतियां होती हैं अतः दुधारी होती हैं—अधिकतर मामलों में इनमें नीचे उतरने की प्रवृत्ति होती है।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप

श्रीअरविन्द का गायत्री मन्त्र

तत्सवितुर्वरं रूपं ज्योतिः परस्य धीमहि।
यन्नः सत्येन दीपयेत्।।

आओ, 'सावित्री' के सर्वोत्तम रूप पर ध्यान केन्द्रित करें, 'परम' की 'ज्योति' पर, जो हमें 'सत्य' द्वारा उद्‌भासित करेगी।

यह ऋग्वेद के प्रचलित मन्त्र गायत्री को थोड़ा बदल कर श्रीअरविन्द का अपना लिखा 'गायत्री' मन्त्र है जिसके द्वारा उन्होंने अपने अतिमानस या भागवत सत्य-चेतना के पूर्णयोग की नयी उपलब्धि को व्यक्त करना चाहा है।

हुता की पुस्तक 'सफेद गुलाब' से : पृ. १०६

मन्त्र और पूर्णयोग

पूर्णयोग की कोई निश्चित पद्धति नहीं

इस योग की साधना का कोई बंधा हुआ मानसिक अभ्यासक्रम या ध्यान का कोई निश्चित प्रकार अथवा कोई मन्त्र या तन्त्र नहीं है, बल्कि यह साधना साधक के हृदय की अभीप्सा से आरम्भ होती है; साधक अपनी ऊर्ध्वस्थित या अन्तःस्थित आत्मा पर ध्यान लगाता है, अपने-आपको भागवत प्रभाव की ओर, अपने ऊपर स्थित भागवत शक्ति और उसके कार्य की ओर तथा हृदय में विद्यमान भागवत उपस्थिति की ओर उद्‌घाटित कर देता है और जो कुछ इन बातों के लिए विजातीय है उस सबका परित्याग कर देता है। केवल श्रद्धा, अभीप्सा तथा आत्मसमर्पण के द्वारा ही यह आत्मोद्‌घाटन हो सकता है।

SABCL खण्ड २३, पृ. ५०५

श्रीमां का नाम मन्त्र की तरह

साधारणतया इस साधना में व्यवहृत होने वाला एकमात्र मन्त्र है श्रीमां का मन्त्र या मेरे और श्रीमां के नाम का मन्त्र। हृदय में और मस्तक में दोनों जगह एकाग्रता की जा सकती है—दोनों का अपना अलग-अलग परिणाम होता है। पहली चैत्य पुरुष को उद्‌घाटित करती है और भक्ति, प्रेम तथा श्रीमां के साथ एकत्व, हृदय में उनकी उपस्थिति तथा प्रकृति के अन्दर उनकी शक्ति की क्रिया को ले आती है। दूसरी आत्मोपलब्धि के लिए, जो कुछ मन से ऊपर है उसका ज्ञान पाने के लिए, चेतना को शरीर से ऊपर उठाने के लिए और उच्चतर चेतना को शरीर के अन्दर उतारने के लिए मन को उद्‌घाटित करती है।

SABCL खण्ड २३, पृ. ७४६

पूर्णयोग में कोई मन्त्र नहीं दिया जाता

सामान्य तौर पर हम कोई मन्त्र नहीं देते। जो लोग ध्यान में किसी चीज को दोहराते हैं वे श्रीमां को पुकार सकते हैं।

२७ जून १९३६

श्रीमां के नाम के सिवाय कोई मन्त्र नहीं

भारत में, जैसे ही गुरु किसी शिष्य को अपना लिया करते थे वे उसे मन्त्र देकर उसके सहारे साधना में आगे बढ़ने को कहते थे। हमारे यहां श्रीमां के नाम-जप के अलावा और कोई मन्त्र नहीं है। लेकिन सामान्य तौर पर हम साधक को कर्म करने के लिए कहते हैं, उन्हें कार्य देते हैं, उनसे अभीप्सा करने को कहते हैं, अवाञ्छित चीजों का त्याग करने को और श्रीमां के प्रति स्वयं को खोलने के लिए कहते हैं।

CWSA खण्ड ३२, पृ. १३९

तुम्हारे मित्र का यह विचार कि यह आवश्यक है कि उसे यहां से कोई मन्त्र मिले और वह उसके लिए यहां आये, पूरी तरह से गलत है। इस योग में कोई मन्त्र नहीं दिया जाता। श्रीमां के प्रति अन्दर से चेतना का उद्घाटन ही यहां की सच्ची दीक्षा है और यह चीज केवल तभी प्राप्त हो सकती है जब व्यक्ति अभीप्सा करे और मन तथा प्राण की विक्षुब्धता तथा हलचल को त्याग दे। इसे पाने के लिए यहां आने का कोई तुक नहीं है। कई इसी आशय से यहां आते हैं और कुछ नहीं पाते, या उनकी कठिनाइयां बढ़ जाती हैं या वे साधना से भटक तक जाते हैं। जब तक व्यक्ति तैयार नहीं होता तब तक यहां आने का कोई मतलब नहीं है, और तुम्हारा मित्र तैयार नहीं प्रतीत होता। प्रबल इच्छा तैयारी का चिह्न नहीं है। जब वह अन्दर से तैयार हो जायेगा, तब उसके यहां आने में कोई बाधा न रहेगी।

CWSA खण्ड ३२, ३३३

श्रीमां को पुकारो, उन पर ध्यान लगाओ

तुम्हारे पत्र के उत्तर में श्रीअरविन्द[१] का कहना है कि तुम अपने हृदय में श्रीमां पर ध्यान लगा सकते और उन्हें पुकार सकते हो—उनका स्मरण करो और अपना सारा जीवन, समस्त विचार और सभी क्रियाओं को उन्हें समर्पित कर दो। अगर तुम चाहो तो तुम उनके नाम का जप कर सकते

[१] श्रीअरविन्द द्वारा अपने सचिव को लिखा पत्र जिसे सचिव ने प्रश्नकर्ता को भेजा।

हो। अपनी सत्ता को शुद्ध करने और अपनी प्रकृति को बदलने के लिए तुम उनका आह्वान कर सकते हो।

या फिर तुम एकाग्रचित्त होकर, ऊपर से पहले श्रीमां की अचञ्चलता तथा शान्ति, फिर उनकी शक्ति, प्रकाश तथा उनके आनन्द को नीचे उतरने के लिए टेर लगा सकते हो। ये चीजें मस्तक के ऊपर हमेशा रहती हैं —लेकिन मानव-मन के लिए ये अतिचेतना में होती हैं—तुम अपनी अभीप्सा तथा एकाग्रचित्तता के द्वारा उनके प्रति सचेत हो सकते हो, तब तुम्हारा शरीररूपी आधार उनके प्रति खुल सकता है ताकि ये चीजें उतर कर तुम्हारे मन, प्राण तथा शरीर में प्रवेश कर सकें।

CWSA खण्ड ३२, १५४-१५५ —श्रीअरविन्द

शरीर की साधना के लिए मन्त्र आवश्यक है

मैंने यह भी समझ लिया है कि शरीर की इस साधना के लिए मन्त्र आवश्यक है। श्रीअरविन्द ने कोई मन्त्र नहीं दिया; उन्होंने कहा कि व्यक्ति को किसी भी बाहरी साधन का सहारा लिये बिना समस्त कार्य कर सकना चाहिये। जिस स्थल पर हम अभी हैं, वे उससे गुजरे बिना ही उसे पार कर गये। अगर उन्हें भी उससे गुजरना पड़ता तो वे यह देख लेते कि शुद्ध रूप से मनोवैज्ञानिक तरीका अपर्याप्त है। जप अनिवार्य होता है। क्योंकि केवल जप ही शरीर पर सीधी क्रिया करता है। मैंने अपना मन्त्र स्वयं खोज निकाला... और मैं अपना मन्त्र निरन्तर जपती रहती हूं—सोते-जागते हुए, तैयार होते, खाते, कार्य करते, दूसरों से बातें करते हुए—यानी, सारे समय, सारे समय मेरा जप पृष्ठभूमि में सतत चलता रहता है।

वस्तुतः, जो जप करते हैं और जो नहीं करते, इन दोनों तरह के लोगों में तुम तुरन्त फर्क देख सकते हो। ऐसे लोग जिनके पास कोई मन्त्र नहीं होता, भले ध्यान करने या एकाग्रचित्त होने का उनका अभ्यास प्रबल हो, लेकिन उनके चारों ओर कोई अस्पष्ट और धुंधली-सी चीज रहती है। जब कि जप का अभ्यास करने वालों को जप एक प्रकार की यथार्थता, एक प्रकार की ठोसता प्रदान करता है : एक अभेद्य कवच; और वे प्रेरणा और उत्साह से भरपूर रहते हैं।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप : १९ मई १९५९

मन्त्रों के द्वारा हुई श्रीमां की कुछ अनुभूतियां

मेरे पास मन्त्रों का पूरा भण्डार है; वे सभी सहज रूप से मेरे पास आये, मानसिक तौर पर मैंने कभी उन्हें नहीं पाया। वे सहज-स्वाभाविक तौर से मेरे हृदय से फूट पड़े, जैसा कि वेदों के लिए कहा जाता है कि वे मन से नहीं, हृदय से निकले...

मुझे मालूम नहीं कि मन्त्रों का यह सिलसिला कब से शुरू हुआ—बहुत पहले से, मेरे यहां आने के पहले से, हालांकि कुछ मन्त्र जब मैं यहां थी तब मेरे अन्दर से उभरे। लेकिन मेरे मामले में, हमेशा छोटे-छोटे मन्त्र ही प्रकट हुए। उदाहरण के लिए, जब श्रीअरविन्द यहां सशरीर थे, तब कठिनाई के हर क्षण, हर एक चीज के लिए मन्त्र हमेशा इस रूप में आया : "मेरे प्रभो!"—सरल रूप से, सहज रूप से—"मेरे प्रभो!" और तुरन्त मेरा सम्पर्क प्रतिष्ठित हो जाता।...

पॉण्डिचेरी आने से पहले मेरा फ्रेंच में एक मन्त्र था। वह था—Dieu de bonté et de miséricorde... —*कृपा तथा करुणा के प्रभो*—लेकिन इसका सचमुच अर्थ क्या है, सामान्यतः उसे समझना कठिन होता है—यह एक सम्पूर्ण वस्तु है, वैश्व वस्तु। मैं शताब्दी के प्रारम्भ से इस मन्त्र को दोहराती रही हूं : वस्तुतः यह आरोहण का, उपलब्धि का मन्त्र है। अब वह उसी रूप में नहीं आता। अब यह ज्यादा स्मृति के रूप में आता है। मैं हमेशा दोहराती रहती थी—*कृपा तथा करुणा के प्रभो*, क्योंकि तब जब कि मैं यह समझ गयी कि सब कुछ भगवान् है और भगवान् ही सब चीजों में विद्यमान हैं और हम ही हैं जो यह भेद करते हैं कि यह भगवान् है और यह भगवान् नहीं है।...

अब मैं निरन्तर संस्कृत का यह मन्त्र सुनती हूं :

ॐ नमो भगवते

यह यहां, मेरे चारों तरफ है, मुझे घेरे हुए है; यह मेरे सभी कोषाणुओं में व्याप्त है और ये सभी कोषाणु आरोहण की प्रक्रिया में निःशेष रूप से निरत रहते हैं...

एक शिष्य के साथ वार्तालाप : १६ सितम्बर १९५८

ॐ नमो भगवते

अब, सभी सिद्धान्तों और मन्त्रों में, जो मन्त्र इस शरीर पर एकदम सीधी क्रिया करता है, जो शरीर के सभी कोषाणुओं में प्रवेश करके, इस तरह धड़कता है (*प्रकम्पन की मुद्रा*) वह है संस्कृत का यह मन्त्र : **ॐ नमो भगवते।**

जैसे ही मैं ध्यान में बैठती हूं, जैसे ही मेरे पास एकाग्र होने के लिए कुछ शान्त क्षण होते हैं, यह मन्त्र शुरू हो जाता है, और शरीर इसे प्रत्युत्तर देता है, शरीर के कोषाणु इसे प्रत्युत्तर देते हैं : वे सभी स्पन्दित, प्रकम्पित होने लगते हैं।

एक रोज यह यहां से ऊपर उठा (*श्रीमां सौर चक्र की ओर इशारा करती हैं*), इस तरह : *ॐ नमो भगवते* **ॐ नमो भगवते ॐ नमो भगवते**। वह प्रचण्ड था। पौन घण्टे तक—जब तक कि मैं ध्यान में रही—मेरे अन्दर सब कुछ 'प्रकाश' से लबालब हो उठा! गहरे-निचले स्तरों पर उसका रंग सुनहरा-कांस्य था (गले के स्तर पर आकर वह रंग करीब-करीब लाल हो गया) और उच्चतर स्तरों पर रंग दूधिया-सफेद प्रकाश में परिवर्तित हो गया : **ॐ नमो भगवते**, **ॐ नमो भगवते, ॐ नमो भगवते।** और उस रोज (*मैं अपने स्नानागार में थी*) वह मन्त्र उतरा; वह मेरे सारे शरीर पर अभिभूत हो गया। वह उसी तरह ऊपर उठा और मेरे कोषाणुओं तक में कम्पन भर गया। कितनी शक्ति थी उसमें! मैं एकदम स्थिर हो गयी, एकदम निश्चल, और मैंने उस चीज को विकसित होने दिया। वह स्पन्दन विस्तृत होता गया, अधिकाधिक फैलता गया, स्वयं मन्त्र की ध्वनि विस्तृत, विस्तृत होती जा रही थी, और शरीर के सभी कोषाणु अभीप्सा की तीव्रता की पकड़ में थे... मानों सारा शरीर फूल रहा था—यह चीज अभिभूत करने वाली थी। मुझे लगा मानों शरीर फट जायेगा!

मैं समझ गयी कि जो लोग सभी चीजों से स्वयं को हटा लेते हैं वे किस तरह सम्पूर्ण रूप से जीते हैं।

और इस मन्त्र में कैसी रूपान्तरकारिणी शक्ति है! मैंने अनुभव किया कि अगर यह चीज चलती रही तो कुछ होकर रहेगा, कुछ ऐसा जो मेरे शरीर के कोषाणुओं के सन्तुलन को बदल देगा।

एक शिष्य के साथ वार्तालाप : १६ सितम्बर १९५८

'सावित्री', —रूपान्तर का मन्त्र

कहा जा सकता है कि *सावित्री* एक अन्तर्दर्शन है, एक ध्यान है, यह अनन्त की, शाश्वत की खोज है। अगर इसे अमरता की इस अभीप्सा के साथ पढ़ा जाये तो स्वयं पढ़ना अमरता के पथ-प्रदर्शक के रूप में कार्य करेगा। *सावित्री* पढ़ना सचमुच भगवान् को उपलब्ध करना है। इसमें योग का हर चरण दिखलाया गया है, साथ ही दूसरे योगों का रहस्य भी इसमें निहित है। निश्चय ही, अगर व्यक्ति पूरे सच्चे-निष्कपट भाव से इसके अन्तर्दर्शन की एक-एक पंक्ति को आत्मसात् कर सके तो अन्ततः वह अतिमानसिक योग के रूपान्तरण तक पहुंच जायेगा। यह सचमुच वह अचूक पथ-प्रदर्शक है जो कभी, कभी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ता; उन सबके लिए इसका सहारा हमेशा रहता है जो इस पथ पर चलना चाहते हैं। *सावित्री* की हर पंक्ति एक-एक मन्त्र की तरह है जो उस सबका अतिक्रमण कर जाती है जिसे मनुष्य ज्ञान द्वारा प्राप्त करता है, और मैं इसे दोहराती हूं, इसके शब्द इस तरह व्यवस्थित हैं कि इसके नाद की लय तुम्हें ध्वनि के मूल उद्गम तक पहुंचा देती है, और वह है **ॐ**।

मोना सरकार की पुस्तक 'Luminous Notes' से

ॐ नमो भगवते।

ये तीन शब्द। मेरे लिए इनका अर्थ था :

ॐ—मैं परम प्रभु से याचना करती हूं।

नमो—उन्हें नमस्कार।

भगवते—मुझे दिव्य बनाओ।...

मेरे लिए इसमें सब कुछ शान्त करने की शक्ति है।

—श्रीमां

श्रीअरविन्द

श्रीमां

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

सितम्बर

१. निम्न प्रकृति पर एकाग्र होना **कभी** अच्छा नहीं है; तुम्हें उस चीज पर एकाग्र होना चाहिये जिसे तुम विकसित करना चाहते हो, उस पर नहीं जिसे तुम नष्ट करना चाहते हो।

२. प्रश्न : मैं उस बालवत् पथ के बारे में जानना चाहूंगा जिसे इस योग में अपनाया जा सकता है।

उत्तर : बालवत् पथ है सन्देह-रहित विश्वास, पूर्ण निर्भरता, अबाध समर्पण का।

३. सब कुछ हमेशा पूरी तरह से व्यक्ति जिस चेतना में हो उस पर निर्भर करता है। लेकिन तुम जैसी चेतना में रहना चाहते हो, उसे चुनने की क्षमता एक विकसनशील वस्तु है और इसे प्राप्त करने में समय लगता है।

४. सत्य की झांकी पाने के लिए हमें अपनी चेतना में कम-से-कम एक कदम पीछे हटना चाहिये, अपनी सत्ता में कुछ गभीरता के साथ प्रवेश करना चाहिये, और आभासों के पीछे शक्तियों की लीला को देखने का प्रयास करना चाहिये और शक्तियों की लीला के पीछे दिव्य उपस्थिति को देखने का प्रयास करना चाहिये।

५. तुम अन्य लोगों के साथ अपने सम्बन्ध के ब्योरों पर ध्यान देने की जगह अपने-आपको भगवान् के प्रति समर्पण के लिए ज्यादा मजबूत बनाने में लगाओ।

६. ... यह किसी ने नहीं कहा कि आध्यात्मिक परिवर्तन आसान चीज है। सभी आध्यात्मिक अन्वेषक यही कहेंगे कि यह मुश्किल चीज है लेकिन सर्वोच्च रूप से करने-योग्य है। अगर भगवान् के लिए इच्छा ही तुम्हारी मुख्य इच्छा बन गयी है तो निश्चय ही तुम पछताये बिना अपना जीवन इसके लिए दे सकते हो और तब तुम समय, कठिनाई या श्रम के लिए न कुढ़ोगे।

७. अधीरता हमेशा भूल होती है। वह सहायता नहीं, बाधा देती है।

साधना के लिए स्थिर, प्रसन्नचित्त श्रद्धा और विश्वास सबसे अच्छा आधार है। बाकी के लिए, ऐसी अभीप्सा के साथ जो तीव्र हो सकती है पर सदा अचञ्चल और स्थिर हो, ग्रहण करने के लिए अपने-आपको सदा खुला रखो। पूर्ण यौगिक सिद्धि एकदम नहीं आती। वह आधार की लम्बी तैयारी के बाद आती है जिसमें बहुत अधिक समय लग सकता है।

८. निष्कपट हृदय संसार की समस्त असाधारण शक्तियों से श्रेष्ठ है।

९. व्यक्ति को बहुत निष्कपट और सीधा होना चाहिये, अपने अन्दर ऐसी किसी चीज को सहन न करो जिसे तुम बिना भय के दिखा न सको, और ऐसा कोई काम न करो जिसे मेरे सामने करने में तुम्हें लज्जा आये।

१०. स्पष्ट कहना और खुला रहना हमेशा अधिक अच्छा होता है। अपनी गलतियां सुधारने का यह सबसे अच्छा तरीका है।

११. प्रश्न : व्यक्ति निरर्थक विचारों से कैसे छुटकारा पा सकता है?
उत्तर : उन्हें तब तक त्यागते रहो जब तक वे आना बन्द न कर दें।

१२. एकदम से चुप रहने की अपेक्षा अपनी वाणी पर संयम कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। सीखने-लायक सबसे अच्छी चीज यह है कि जो उपयोगी है उसे अधिकाधिक यथार्थ और यथासम्भव सच्चे तरीके से कहा जाये।

१३. प्रश्न : "अनुकम्पा" का क्या अर्थ है?
उत्तर : अनुकम्पा क्षमा, दया का पर्याय है। यह बल और दयालुता से भरपूर दया है जो भूलों का परिमार्जन करती और क्षमा करती है, सभी अपराधों को मिटाती है और हमेशा वही चाहती है जो प्रत्येक के लिए अच्छे-से-अच्छा है।

१४. एक पवित्र आग है जो हृदय में प्रज्वलित होती और सारी सत्ता को घेरे रहती है; यह वह 'अग्नि' है जो सब कुछ प्रकाशित और शुद्ध करती है। हर बार जब तुम मुझसे कुछ प्रगति की मांग करते हो तो मैं तुम्हारे अन्दर इसी अग्नि को प्रज्वलित करती हूं, लेकिन यह मिथ्यात्व और अहंकार के सिवा और किसी चीज को नष्ट नहीं करती।

१५. हे प्रभो, परम सत्य,

हम तुझे जानने और तेरी सेवा करने की अभीप्सा करते हैं।

हमें अपने योग्य बालक बनने में सहायता कर। और इसके लिए हमें अपने सतत आशीर्वाद के बारे में सचेतन बना ताकि कृतज्ञता हमारे हृदयों को भर दे और हमारे जीवन पर शासन करे।

१६. तुम्हें अपने अध्यवसाय में सच्चा होना चाहिये, तब तुम आज जो चीजें नहीं कर सकतीं उन्हें एक दिन नियमित और आग्रहपूर्ण प्रयासों के बाद कर सकोगी।

अपने-आपको पूरी तरह भगवान् के अर्पण कर दो। भागवत सहायता हमेशा तुम्हारे साथ रहेगी।

१७. जिन भगवान् को हम खोजते हैं वे कहीं दूर और हमारी पहुंच के बाहर नहीं हैं। वे अपनी सृष्टि के हृदय में हैं और वे हमसे बस यही चाहते हैं कि हम उन्हें खोजें और अपने-आपको रूपान्तरित करके उन्हें जानने-योग्य बनें, उनके साथ तदात्म होकर अन्ततः सचेतन रूप से उन्हें अभिव्यक्त करें। हमें अपने-आपको इसके लिए उन्हें अर्पित कर देना चाहिये; हमारे जीवन का यही सच्चा कारण है।

१८. जब तुम किसी के साथ हो और निष्कपट हो, तो तुरन्त तुम्हारी प्रतिक्रिया यही होनी चाहिये कि तुम ठीक चीज करो, भले तुम जिसके साथ हो वह ठीक चीज न भी करे। सबसे सामान्य उदाहरण ले लो : कोई नाराज होता है; उसे चोट पहुंचाने वाली बातें कहने की जगह तुम चुप रहते हो, स्थिर और शान्त रहते हो। तुम्हें उसके गुस्से की छूत नहीं लगती।

१९. तुम अपने चरित्र में जो विजय प्राप्त करते हो, वह चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो, ऐसी चीज है जो सारे संसार में प्राप्त की जा सकती है।

२०. अगर तुम समय-लाभ करना चाहो तो एकाग्र होना सीखो। ध्यान देकर काम करने से ही आदमी तेजी से काम कर सकता है और काम ज्यादा अच्छा भी होता है।

२१. अगर हर एक जो कुछ जरूरी है वह करे और भरसक अधिक-से-अधिक करे तो एक ऐसी स्थिति तक पहुंच जाना सम्भव है जहां से

हमेशा ऊपर की ओर ही गति होगी, जहां नये सिरे से शुरू करने के लिए कुछ नष्ट करने की जरूरत न होगी।

२२. शब्दों से परे, विचारों के ऊपर, तीव्र अभीप्सा की ज्वाला हमेशा स्थिर और चमकदार रूप से जलती रहनी चाहिये।

२३. तुम्हारी अभीप्सा हमेशा आगे बढ़ती रहे, शुद्ध और सीधी, उस परम चेतना की ओर जो समस्त आनन्द और आशीर्वचन है।
अभीप्सा का सूर्य अहंकार के बादलों को छिन्न-भिन्न कर दे।

२४. ऐसी भक्ति जो एकाग्र, शान्त और हृदय की गहराई में नीरव रहती है, सेवा और आज्ञापालन में व्यक्त होती है; वह रोने-धोने, शोर मचाने वाली भक्ति से कहीं अधिक शक्तिशाली, सच्ची और दिव्य है।

२५. जीवन को एक ऐसे फूल की तरह खिलना चाहिये जो अपने-आपको भगवान् के प्रति अर्पण करता है।

२६. तुम जो कुछ हो, तुम जो कुछ करो, उस सबको सच्चाई के साथ समर्पित करना साधना की दृष्टि से ध्यान की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावशाली है।

२७. हर चीज कितनी सुन्दर, महान्, सरल और शान्त बन जाती है जब हमारे विचार भगवान् की ओर अभिमुख होते हैं और हम अपने-आपको भगवान् के अर्पण कर देते हैं!

२८. केवल पूरी तरह शान्त और अचञ्चल रह कर और अपने अन्दर भागवत कृपा पर अडिग विश्वास और श्रद्धा रख कर ही तुम परिस्थितियों को यथासम्भव अच्छे-से-अच्छा रख सकोगे। **सर्वोत्तम हमेशा उन्हीं के साथ होता है** जो अपना समस्त विश्वास भगवान् और केवल भगवान् पर ही रखते हैं।

२९. जब तुम्हें अपने जीवन में कठिनाई का सामना करना पड़े तो यही मानो कि यह भगवान् की कृपा है और यह सचमुच वही बन जायेगी।

३०. हमें एक बात पर विश्वास रखना चाहिये कि जो कुछ होता है वह ठीक वही होता है जो हमें और सारे जगत् को अधिक-से-अधिक तेजी से लक्ष्य की ओर ले जा सके—और वह लक्ष्य है भगवान् के साथ ऐक्य और अन्ततः भगवान् की अभिव्यक्ति। और यह निष्कपट और सतत श्रद्धा ही हमारी सहायता और सुरक्षा है।

एक साधक के साथ पत्र-व्यवहार

(ये पत्र एक ऐसे साधक के नाम लिखे गये हैं जो बाद में श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र में अध्यापक बन गये थे। इनमें से अधिक पत्र १९३३ और १९३५ के बीच लिखे गये थे।)

आपने अपने 'वार्तालाप' में कहा है कि बुद्धि, सत्य ज्ञान और यहां नीचे उसकी चरितार्थता के बीच एक मध्यस्थ की तरह है। क्या इसका मतलब यह नहीं हुआ कि सत्य ज्ञान पाने हेतु मन से ऊपर उठने के लिए बौद्धिक परिष्करण अनिवार्य है?

अच्छा मानसिक यन्त्र तैयार करने के लिए, जो विशाल, नमनीय और समृद्ध हो, बौद्धिक परिष्करण अनिवार्य है लेकिन उसका कार्य बस वहीं पर समाप्त हो जाता है।

मन से ऊपर उठने में वह सहायक होने की जगह अधिकतर बाधक ही होता है क्योंकि साधारणतः परिष्कृत और शिक्षित मन अपने-आपसे सन्तुष्ट रहता है और ऐसा विरल ही होता है कि वह अपने-आपको नीरव करने की कोशिश करे ताकि उसका अतिक्रमण किया जा सके।

यह एक उड़ती हुई प्रेरणा है जो मुझे बहुत अधिक अध्ययन करने के लिए प्रेरित करती है।

जब तक तुम्हें अपने-आपको गढ़ने की, अपने मस्तिष्क की रचना करने की जरूरत है तब तक तुम अध्ययन करने की इस प्रबल उत्कण्ठा का अनुभव करोगे, लेकिन जब मस्तिष्क ठीक रूप ले लेगा तो धीरे-धीरे अध्ययन की रुचि भी जाती रहेगी।

उच्चतम प्रेरणाओं का स्रोत मौन में है।

हमारा लक्ष्य है भगवान् के साथ तादात्म्य। पता नहीं क्यों मैं यह या वह जानने की कोशिश में लगा रहता हूं।

स्वयं काम महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि वह जिस भाव से किया जाता है वह महत्त्वपूर्ण है। अपने मन को पूरी तरह अचञ्चल रखना कठिन है, अतः ज्यादा अच्छा यह है कि उसे मूर्खता-भरे विचारों या अस्वस्थ स्वप्नों में व्यस्त रखने की जगह पढ़ाई-लिखाई में व्यस्त रखा जाये।

मैं यह देखना चाहता हूं कि अगर मैं पढ़ना बिलकुल बन्द कर दूं तो क्या होगा।

मन को हमेशा एक ही चीज में लगाये रखना कठिन है। अगर उसे व्यस्त रखने के लिए काफी काम न दिया जाये तो वह बेचैन होने लगता है। अतः, मेरे ख्याल से पढ़ना एकदम बन्द कर देने की जगह अपनी किताबें सावधानी से चुनना ज्यादा अच्छा है।

मैं मोटर-कार के बारे में एक पुस्तक पढ़ रहा हूं, लेकिन पढ़ता हूं तेजी से; जहां जटिल यन्त्र-विन्यास का वर्णन होता है उसे लांघ जाता हूं।

अगर तुम कोई चीज पूरी तरह से, सचेतन रूप से और उसके समस्त ब्योरे के साथ न सीखना चाहो तो उसे शुरू न करना ही ज्यादा अच्छा है। यह सोचना बहुत बड़ी भूल है कि थोड़ा-बहुत छिछला और अपूर्ण ज्ञान किसी काम का हो सकता है। यह बिलकुल बेकार है सिवाय इसके कि लोगों को ज्यादा गर्वीला बना दे क्योंकि वे कल्पना कर लेते हैं कि वे जानते हैं जब कि वास्तव में जानते कुछ भी नहीं।

बच्चे के लिए लाभदायक और उपयोगी खेल चुनना कठिन है। इसमें बहुत सोच-विचार और मनन-चिन्तन की जरूरत होती है और आदमी बिना सोचे-समझे जो कुछ करता है उसके परिणाम दुःखद हो सकते हैं।

जब हम कोई गन्दी पुस्तक, एक अश्लील उपन्यास पढ़ते हैं तो क्या हमारा प्राण मन के द्वारा उसमें मजा नहीं लेता?

मन में भी विकृतियां होती हैं। एक दरिद्र और अपरिष्कृत प्राण ही ऐसी

चीजों में मजा ले सकता है।

विद्यार्थी कक्षा में इतनी अधिक बातचीत करते हैं कि मुझे प्रायः उन्हें डांटना पड़ता है।

कठोरता के साथ नहीं, **आत्म संयम** द्वारा बच्चों को नियन्त्रित किया जाता है।

मुझे तुमसे कहना चाहिये कि अगर कोई अध्यापक चाहता है कि उसका आदर किया जाये तो स्वयं उसे **आदरणीय** होना चाहिये। 'क' अकेला नहीं है जो कहता है कि तुम आज्ञापालन करवाने के लिए मारपीट का उपयोग करते हो; इससे अधिक अनादरणीय कुछ भी नहीं है। पहले तुम्हें अपने ऊपर नियन्त्रण करना चाहिये और अपनी इच्छा आरोपित करने के लिए पशु-बल का उपयोग कभी नहीं करना चाहिये।

मैंने हमेशा यही सोचा है कि अध्यापक के चरित्र की कोई चीज विद्यार्थियों की अनुशासनहीनता के लिए जिम्मेदार होती है।

मैं आशा करता हूं कि आप मुझे निश्चित निर्देश देंगी जो मुझे अपनी कक्षा में व्यवस्था रखने में सहायता देंगे।

सबसे महत्त्वपूर्ण है कि तुम आत्म-संयम रखो और कभी क्रोध न करो। अगर तुम्हारा अपने ऊपर नियन्त्रण न हो तो तुम औरों पर नियन्त्रण करने की आशा कैसे कर सकते हो, और विशेषकर बच्चों पर जो तुरन्त जान लेते हैं कि कब व्यक्ति का अपने ऊपर संयम नहीं होता?

अपने पास किताबें होते हुए भी बच्चे अपना पाठ नहीं सीख पाते।

छोटे बच्चों के साथ तुम्हारे अन्दर बहुत ज्यादा धैर्य होना चाहिये और एक ही चीज को तरह-तरह से समझाते हुए बार-बार दोहराना पड़ता है। चीज धीरे-धीरे उनके मन में घुसती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. २२३-२२७

प्रारम्भिक शर्तें

इस योग की प्रारम्भिक शर्तें हैं :

१. सत्ता में पूर्ण निष्कपटता और समर्पण। समस्त जीवन का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिये भागवत जीवन तथा निम्नतर मनुष्य का उच्चतर भागवत प्रकृति में रूपान्तर। मन, हृदय, प्राणिक सत्ता या शरीर की किन्हीं भी आसक्तियों, लालसाओं या आदतों से चिपक कर नहीं रहना चाहिये जो इस एकनिष्ठ अभीप्सा तथा एकमात्र लक्ष्य में आड़े आती हैं। जैसे ही ऊपर से और भागवत शक्ति से मांग आये, व्यक्ति को इन्हें पूरी तरह से छोड़ देने के लिए तैयार होना चाहिये।

२. मन, प्राणिक सत्ता तथा समस्त प्रकृति में तात्त्विक अचञ्चलता, शान्ति तथा परिशुद्धि।

इन दोनों अवस्थाओं का अपने अन्दर निर्माण करने के लिए तुम्हें ध्यान के घण्टों को अर्पित कर देना चाहिये, और यह होता है अभीप्सा द्वारा, आत्मावलोकन द्वारा तथा जो चीजें प्रकृति को अशान्त करती, उसे विक्षुब्ध, अस्तव्यस्त तथा दूषित करती हैं उन सभी के त्याग द्वारा। अगर अभीप्सा उचित तरीके से, शान्ति के साथ, सच्चाई तथा निष्कपटता के साथ की जाये तो वह इस लक्ष्य को कार्यान्वित करने के लिए ऊपर से भागवत सहायता को ले आती है।

रही बात अपने काम, आवश्यकताओं, परिवार इत्यादि को अर्पित किये गये घण्टों की, तो ये केवल निम्नलिखित शर्तों के पूरा करने पर ही सहायता बन सकते हैं।

१. इन सभी चीजों को अपनी सम्पत्ति, अपनी आन्तरिक सत्ता के रूप में नहीं बल्कि बाहरी चीजों के रूप में देखना, किसी भी तरह की कामना या आसक्ति के बिना काम को अपनी सर्वोत्तम क्षमता के अनुसार तब तक करते रहना जब तक उसका दायित्व तुम्हारे कन्धों पर हो।

२. किसी भी प्रकार के अहंकारात्मक उद्देश्य के बिना समस्त कर्म को उत्सर्ग के रूप में करना।

आन्तरिक अचञ्चलता तथा शान्ति को स्थापित तथा अधिक गभीर करना। अगर इतना किया जा सके तो ये सभी चीजें अधिकाधिक बाहरी

प्रतीत होंगी तथा कामनाओं और आसक्तियों का झड़ना सम्भव हो जायेगा।

आवेग से पिण्ड छुड़ाने के लिए भी यही शर्त है। अगर तुम स्वयं को इन गतियों से अलग कर लो और अपने अन्दर अचञ्चलता तथा शान्ति को स्थापित कर लो तो आवेग सतह पर तो उठ सकते हैं लेकिन उनका अनुभव बाह्य गतियों के रूप में किया जायेगा और तुम उनका सामना कर सकते हो या उनसे पिण्ड छुड़ाने के लिए भागवत सहायता को नीचे बुला सकते हो। जब तक मन अचञ्चल न हो जाये तब तक उस प्राणिक सत्ता का इनके साथ व्यवहार करना अन्ततः सम्भव नहीं होता जिससे ये शक्तियां उठती हैं।

—श्रीअरविन्द

प्रकाश का कवच

(करीब ३० दशक पहले लिखा स्व. रवीन्द्रजी का यह छोटा-सा लेख आज भी कम मायने नहीं रखता, शायद उस जमाने से ज्यादा ही रखता है। वास्तव में जब तक मनुष्य अपना रवैया नहीं बदलता तब तक वह जीवन-पथ पर यूं ही गिरता-पड़ता, उदासी से घिरा चलता चलेगा। —सं.)

आजकल सभी प्रगतिशील देशों में शोर मच रहा है कि हमारी सभ्य मनुष्यजाति ने देश के वातावरण को, नदियों और समुद्रों के पानी को गन्दा कर दिया है। मोटरें, गैस के चूल्हे, कल-कारखाने, छोटी-छोटी मशीनें सभी इसमें अपना भाग ले रहे हैं। समस्या इतनी गम्भीर हो गयी है कि जल्दी ही इसका इलाज न किया गया तो स्थिति काबू से बाहर हो सकती है और फिर न सिर्फ मानव जीवन बल्कि जीवन-मात्र का बचना कठिन हो जायेगा। अमरीका, जापान आदि में इस विषय में विशेष खोज की जा रही है।

इसके साथ ही साथ अन्दर का वातावरण भी बिगड़ रहा है। जैसे सिगरेट का धुंआ कमरे की हवा को भारी और दुर्गन्धवाला बना देता है वैसे ही गुस्सा, काम-वासना, भय, लोभ आदि अदृश्य चीजें भी अपने आसपास के वातावरण में अपना प्रभाव फैला देती हैं। हममें से हर एक

के चारों ओर एक प्रकार का अपना वातावरण होता है जिसे हम इधर-उधर फैलाते चलते हैं। किसी साधु पुरुष के पास बैठने से हमें एक प्रकार की शान्ति का अनुभव होता है और एक व्याकुल आदमी के पास बैठने-भर से हमारे अन्दर भी व्याकुलता घुस आती है। इस प्रकार के अनुभव तो हम सबने ही किये होंगे। इससे हमें कुछ अनुमान लग सकता है कि हमारा आन्तरिक वातावरण किस तरह औरों को प्रभावित कर सकता है। पहले जमाने में वातावरण की शुद्धि के लिए हवन-यज्ञ आदि किये जाते थे। हवन का धुंआ हवा को पवित्र करता था और उसके मन्त्र अन्तर को शुद्ध करते थे। आज बाहर के वातावरण को बिगाड़ने के लिए ज्यादा उपाय किये जाते हैं या अन्तर के वातावरण को, यह कहना मुश्किल है।

अगर आदमी ऐसा बन सके कि भगवान् के सिवाय और किसी के प्रभाव को अपने अन्दर न आने दे तो उसकी बहुत सारी कठिनाइयां अपने-आप गायब हो सकती हैं, लेकिन इसके लिए यह जरूरी है कि हम अपने चारों ओर एक ऐसा वातावरण बना सकें जो बाहर से आने वाली चीजों की, दूसरों के प्रभाव की छानबीन कर सके और जितने भी ऐसे प्रभाव हैं जिन्हें हम नहीं आने देना चाहते उन्हें बाहर ही रोक दे। इसके लिए काफी प्रशिक्षण और अनुभव की जरूरत है। इसीलिए पुराने जमाने में लोग पहाड़ों, जंगलों या गुफाओं में निवास करते थे जिससे बाहरी प्रभाव कम हो जायें। परन्तु देखा यह गया है कि मनुष्य प्रभाव के लेन-देन के बिना नहीं रह सकता। जो लोग एकान्त में रहते हैं वे मनुष्यों से तो दूर हो जाते हैं पर पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों के जीवन में रस लेने लगते हैं। इसलिए मानव-समाज से भागना भी कोई उपाय नहीं है। जब एक समस्या आनी ही है तो उससे भागने से क्या लाभ, उसका सामना ही क्यों न कर लिया जाये? इसके लिए हमें अपने अन्दर और अपने चारों ओर भगवान् का वातावरण बनाने की कोशिश करनी होगी ताकि हमारे अन्दर जो कुछ आये, छन-छन कर आये।

यहां एक और प्रश्न उठ खड़ा होता है। हमें हर रोज काफी मात्रा में भोजन करना पड़ता है जो अपने-आपमें चेतनाहीन होता है, जो हमारे अन्दर जड़ता या ऊटपटांग चेतना ला सकता है। भीष्म पितामह का उदाहरण तो जगविदित है ही। इसके लिए प्राचीन काल से हमारे यहां यह प्रथा चली

आ रही है। आज और बहुत-सी अच्छी बातों के साथ उसे भी भुलाया जा रहा है। भोजन करने से पहले उसे भगवान् को अर्पण किया जाये, इसका यह अर्थ नहीं कि हम यह आशा करें कि भगवान् आकर हमारे भोजन में हिस्सा बंटायेंगे, इसका मतलब इतना ही है कि हमारे अन्दर अर्पण की भावना पैदा होगी और हमारा भोजन भगवान् के प्रभाव में आ जायेगा। उसके बाद हम उसे प्रसाद-रूप में लें तो वह अवाञ्छनीय प्रभाव को नहीं लायेगा बल्कि भगवान् के प्रभाव को पक्का करेगा।

संसार में रहते हुए दूसरों के प्रभाव से बचना असम्भव-सा है। हमारे चारों ओर दुष्टता-भरे विचार—क्रोध, काम, अशुभ कामना आदि का वातावरण होता है। हमारे बारे में, औरों के बारे में, तरह-तरह की बातें सोची और कही जाती हैं, ये बातें हमारे वातावरण को उसी तरह गन्दा करती हैं जैसे हैजा, प्लेग आदि के कीटाणु हमारे बाहरी वातावरण को बिगाड़ते हैं। बाहरी प्रभाव को हम तुरन्त देख पाते हैं और उससे बचने के उपाय करते हैं जब कि अन्दर की चीजों की ओर से हम आंखें बन्द किये रहते हैं। सारे समय चौकन्ना रहना भी सम्भव नहीं होता। इसलिए इन सबसे बचने का जो एकमात्र उपाय है उसी को अपनाना होगा। हम अपने चारों ओर प्रकाश का कवच पहन लें, ऐसे प्रकाश का जो दिल की सच्चाई, अभीप्सा और आनन्दपूर्ण समर्पण से आता है। यह कवच हो तो फिर कोई चीज हमें छू भी नहीं सकती। कोई जान-बूझकर हमारे ऊपर बुरी भावनाएं फेंके भी तो वे हमें छुए बिना उसी के पास लौट जायेंगी।

काम सचमुच कठिन है। पर कठिन काम ही तो करने-लायक होते हैं।

—रवीन्द्र

सन्त वाणी

अपना प्रत्येक शब्द उच्चारित करने से पहले तीन दरवाजों से गुजरना चाहिये। पहले दरवाजे पर सन्तरी पूछेगा, "क्या यह सच है?" दूसरे पर, "क्या यह कहना आवश्यक है?" और तीसरे पर, "क्या यह सदय है?"

क्या मेरा और आपका मित्र समान है?

(हमारे विद्यालय के भूतपूर्व छात्र प्राञ्जल—जो अब पुरातत्त्व-विज्ञान के अध्ययन में रत हैं—उनका छात्रावस्था में लिखा लेख प्रस्तुत है—सं.)

कहने को तो दोस्त के नाम पर मेरा कोई दोस्त नहीं, परन्तु कभी-कभी कठिनाइयों के समय ऐसा लगता है कि कोई मेरा साथ दे रहा है। जब भी मुझे उसकी जरूरत होती है तो मैं उसे बुला लेता हूं। न केवल मुश्किलों में बल्कि खुशियों में भी वह मेरा बराबर का साझेदार है। वह मेरे पास किसी प्रकार के दुःख-दर्द, बुरी आदतों, कठिनाइयों आदि को फटकने नहीं देता। वह इन सब चीजों को मुझसे दूर हटा कर मेरे जीवन में खुशियां ही खुशियां भर देता है। अगर किसी कारण मैं दुःखी होऊं या होना चाहूं, तो भी वह मुझे दुःखी नहीं होने देता। मेरा आज तक का अनुभव कहता है कि एक वही है जिसमें एक आदर्श मित्र की खूबियां हैं और मैं उस पर इतना विश्वास करता हूं कि मैं जीवन-भर उस पर निर्भर रह सकता हूं। मैं जानता हूं कि मेरा यह मित्र मेरा आजीवन साथी है। अतः वह मेरे साथ कभी विश्वासघात नहीं करेगा क्योंकि एक प्रकार से वह मेरा ही एक रूप है, मेरी ही अच्छाई है। कुछ इस तरह जैसे किसी सिक्के के दो पहलू। शायद यह इससे कुछ अलग है, और वह मेरा मित्र तो बहुत अच्छा है, लेकिन मैं भी कोई बुरा थोड़े ही हूं! अन्तर सिर्फ यह है कि मैं एक शरीर-रूप में हूं और वह किसी अदृश्य रूप में। कुछ उस सिक्के के जैसे जिसके किसी भी एक पहलू के बिना दूसरा मूल्यहीन है। कुछ वैसे जैसे मेरी आत्मा के बिना मेरा शरीर और मेरे शरीर के बिना मेरी आत्मा मूल्यहीन है। जब कभी भी मैं किसी असमञ्जस में पड़ जाता हूं तो हमेशा वह मुझे गलत निर्णय लेने से रोकता है और मुझे अपना सुझाव देता है। मैं यह देखता आया हूं कि जब भी मैंने उसके सुझाव को ध्यान में रखते हुए निर्णय लिया, कभी कुछ गलत नहीं घटा। उसका सुझाव पाने के लिए मुझे अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता है, सिर्फ उसे सुनना होता है। यह इसलिए क्योंकि कभी-कभी वह मुझसे कहता रह जाता है और मैं उसकी तरफ ध्यान भी नहीं देता और बाद में पछताता हूं।

लेकिन फिर लगता है कि वह मुझसे कह रहा है—'अब पछताए होत क्या जब चिड़ियां चुग गईं खेत।'

आप जान गये होंगे, मेरा वह मित्र कौन है! वह है मेरी आत्मा, मेरे अन्तर्तम में विराजमान भगवान्। क्या आपके अन्दर का भगवान् भी आपका मित्र है?

—प्राञ्जल गर्ग

श्रीमां ने कहा है

अगर तुम भगवान् को अविश्वास के साथ और डरते हुए बुलाते हो, अगर तुम्हारे मन में यह विचार रहता है कि मैं बुला तो रहा हूं पर न जाने भगवान् का उत्तर मिलेगा या नहीं, तो विरोधी शक्तियां, ऐसी शक्तियां जो भगवान् के काम में बाधा डालना चाहती हैं, तुम्हारे भय, शंका, अविश्वास के रास्ते तुम्हारे अन्दर घुस पड़ेंगी और तुम्हारे काम में रोड़े अटकाएंगी। इसलिए हमेशा सच्चे दिल से पूरी सच्चाई और श्रद्धा के साथ टेर लगाओ। याद रखो कि सच्चाई का कभी नाश नहीं हो सकता। जो असत्य है, जो कपटपूर्ण है उसका नाश जरूर होगा। अगर हम भगवान् के साथ हैं तो हमारी विजय जरूर होगी। चाहे कितना भी विरोध हो, चाहे कैसी भी स्थिति हो, भगवान् की जीत होगी और जरूर होगी।

अपने जीवन में बाहरी चीजों को बहुत महत्त्व न दो। ऊपर से परिस्थितियां कैसी भी हों, अन्दर की शान्ति को बनाये रखो और भगवान् की शरण में ही रहने की आदत डाल लो। और सब नाते झूठे हैं, एक भगवान् का नाता ही सच्चा नाता है और जीवन में बस उसी का मूल्य है। भगवान् को पाना, उनके जैसा बनना कठिन जरूर है परन्तु सच्चाई के साथ कोशिश करते रहो, विघ्न-बाधाओं की परवाह किये बिना लगे रहो तो सफलता जरूर मिलेगी।

धीरज धरो, मुहूर्त शीघ्र आने वाला है

अम्माजी कृतकृत्य हो उठीं।

उनके घर सम्पूर्ण देवत्व उतर आया है। इधर ब्रह्मा, विष्णु, महेश कैसे शोभ रहे हैं और उधर लौलीन नीलकण्ठ और पार्वतीजी। मानों साक्षात् शक्ति और सौन्दर्य विराजमान हों। और पास ही हैं विघ्नेश्वर और मूषक महाराज। परमसुख और आनन्द से परितृप्त हो रहे हैं मोदकप्रिय लम्बोदर।

सुध-बुध गंवाये अम्माजी आनन्द से बौरा गयी थीं। अहो भाग्य! देवता पधारे हैं, अब वे उन्हें किसी हालत में यहां से नहीं जाने देंगी। हर्गिज नहीं।

"ले, सचमुच ही सठिया गयी मैं। भाड़ में गयी मेरी सारी बुद्धि। चरण तक नहीं पखारे, भोग तक नहीं लगाया" और अम्माजी लगभग दौड़ती हुई-सी जा पहुंचीं रसोई में और वहां से सारा हलवा बड़ी-सी तश्तरी में सजा कर ले आयीं। बड़े ही प्रेम से आंखें मूंदे, हाथ जोड़े बोलीं—"हे प्रभो! आप गरीब के घर की यह तुच्छ भेंट स्वीकारो। आपकी इस चरणदासी का जन्म-जन्मान्तर सफल हो जायेगा।"

अचानक दूर से आती हुई वंशीध्वनि के स्वर में किसी ने कहा—"अम्मा, तुम तो सारा-का-सारा हलवा ले आयीं, अपने घरवालों के लिए कुछ भी न छोड़ा!"

"अम्मा" बंसीबजैया के इस सम्बोधन से गद्‌गद मानों वह सशरीर स्वर्ग पहुंच गयीं। सारा ब्रह्माण्ड कुछ समय के लिए "अम्मा" "अम्मा" की प्रतिध्वनियों से गूंज उठा। होश आया तो भीगे अञ्चल से आंसू पोंछती हुई बोलीं, "हे मुरलीधर, हे अन्य सभी देवगण! आपने खाया तो सारे जग ने खाया। केवल मेरी कोख से जन्मे बेटों ने ही नहीं बल्कि जग-भर के सभी बेटे-बेटियों ने खाया।"

देवतागण मन्द-मन्द मुस्कुरा दिये। अम्माजी तश्तरी लिये पहले बंसीबजैया के पास गयीं, प्रणाम कर आंखों ही आंखों में लेने का निवेदन किया। नटखट श्याम की आंखें चमकने लगीं, होंठ मुस्कुराते हुए हिले और बोले —"अम्मा, अगर सारा-का-सारा ले लूं तो!"

अम्माजी की आंखें क्षण-भर को कन्हैया के मुखमण्डल पर ठहर गयीं। शरारती दृष्टि ताड़ते ही अभिनय के स्वर में बोलीं—"लाज रखियो कन्हैया मोरी।"

कन्हैया ने ठहाका मारा। सारा कमरा वंशी-ध्वनि से लहलहा उठा। कन्हैया ने हलवा चखा और अपने ही हाथों से अम्मा को खिलाया और इधर अम्माजी देखती क्या हैं, सभी देवी-देवता अपने पेट पर हाथ फेर रहे हैं और सबके मुख पर तृप्ति के भाव झलक रहे हैं।

"तो अब चलें, अम्मा, तुमने तो अच्छी-खासी पेट-पूजा करा दी।" कृष्ण का मधुर स्वर सुनायी दिया, "और हां, अपने बेटे से कहना कि उसने तो एक प्रासाद खड़ा कर दिया है, बहुत सुन्दर बना है यह। लगन, मेहनत और प्रेम के बिना यह सम्भव न होता।"

अम्माजी दोनों बांहें फैला कर रास्ता रोक कर खड़ी हो गयीं। कांपते, भयभीत स्वर में बोलीं, "नहीं, नहीं, कुंवर कन्हाई नहीं, नहीं देवगण। अब आप मुझे छोड़ कर नहीं जा सकते, आपको यहीं रहना पड़ेगा। नहीं, नहीं, घर पधारे भगवान् को मैं अपनी भक्ति से बांधूंगी, उसकी डोर छोटी पड़ी तो प्रेम की डोर भी जोड़ दूंगी। भक्ति और प्रेम मिल कर भी न बांध पाये तो अपने आंसुओं की लड़ी तो है ही। इस दीन-दुखिया के आंसुओं पर भी तुम तरस न खाओगे देव? उनसे भी करुणाविगलित न हो उठोगे?" अम्माजी पगलायी हुई, अपनी रौ में बोलती चली गयीं। "भक्ति और प्रेम में पगे सच्चे अश्रुकण को तुमने कभी नहीं ठुकराया है। मुझे क्या अनाथ, बेसहारा, अपंग बना कर छोड़ जाओगे? बोलो, बोलो, कुंवर कन्हाई बोलो!"

सारी पृथ्वी पर नीरवता उतर आयी। कृष्ण ने अपने दीर्घपक्ष्मों को धीरे-धीरे उठाया। क्षण-भर अम्मा की ओर निर्निमेष देखते रहे। अम्माजी ने ठोस अनुभव किया कि इस अनन्त दृष्टि के सम्मुख उनका अस्तित्व कण-भर का है और देखा कि उस कण में कोई नन्हीं-सी चीज चमक रही है, वह था—प्रेम-भक्ति से भीना एक सच्चा अश्रुकण। उन्हें लगा सचमुच इसी अश्रुजल का मूल्य है। इसी प्रेम और भक्ति पर सारा जीवन टिका है और इस सच्चे बिन्दु के लिए ही भगवान् कृष्ण उन्हें एकटक निहार रहे हैं मानों जगत् के किसी रहस्योद्घाटन का क्षण आ गया है। उनका शरीर स्वयं झुकने लगा और धीरे-धीरे साष्टांग प्रणाम की मुद्रा में दण्डवत् हो गया, दोनों नेत्रों में अश्रुकण ठिठके-से रह गये।

भगवान् श्रीकृष्ण की गभीर वाणी अग-जग में गूंज उठी—"उठो, अम्मा उठो। अभी हमारे यहां रहने का समय नहीं आया। तुम्हारी भक्ति और

प्रेमभरा विश्वास हमें यहां उतार लाया लेकिन हमें वापिस जाना होगा। धैर्य धरो, एक दिन हम यहां आयेंगे, इतना ही नहीं, समस्त स्वर्ग धरती पर उतर आयेगा। जब सारी धरती स्वर्ग की टेर लगायेगी तो स्वर्ग को नीचे उतरना ही होगा। धीरज धरो, अब अधिक देर नहीं है। लेकिन अभी समय नहीं आया है, इस बार हमें वापिस जाना पड़ेगा। तुम स्वयं जरा पीछे मुड़ कर देखो। क्या तुम्हारे बेटे यह चाहते हैं कि उनके द्वारा खड़े किये गये भवन में हम विराजें? नहीं। जरा अतीत में झांक कर देखो।

और सचमुच अम्माजी अतीत में चली गयीं।

घर-भर में उछाह २६ दूने बावन था। रेल-पेल, चहल-पहल। केवल परिवार के लोग नहीं, अड़ोसी-पड़ोसी, हितैषी, सभी उस उत्साह में शामिल थे। घर-भर में शादी-ब्याह जैसी रौनक छायी थी। देश-विदेश से अम्माजी के बेटे-बेटियां, बहुएं, नाती-पोते आये थे। अपने भरे-पूरे परिवार को एक साथ देख-देख कर अम्माजी के पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। और फिर शादी-ब्याह जैसी ही तो बात थी। उनके नये घर का उद्घाटन होने वाला था। बीसियों लोग हों तो पचासों काम। बूढ़े शरीर में किसी ने नयी शक्ति उंडेल दी मानों, वे उधर-से-इधर, इधर-से-उधर, फिरकी बनी हुई थीं। अन्ततः तो उन्हें ही सबकी व्यवस्था देखनी पड़ेगी और इधर बेटे हैं कि अपने-आप बहुत-सी चीजों का निर्णय ले लेते हैं। "हां ठीक है" अम्माजी सोचतीं, "मैंने अपने बेटे-बेटियों को पूरी छूट दी है लेकिन काम-धाम मुझसे पूछ कर भी तो होना चाहिये। अब देखो छोटे बेटे रघु को। इतना बड़ा भवन इसी ने तो तैयार किया है लेकिन मेरा चौका देखो। यह अंगरेज़-फ़ंगरेज़ के चौके-चूल्हों का हिसाब मुझे नहीं भाता। इस बुढ़ापे में खड़े-खड़े खाना पकाओ, अरे ना भी पकाऊं तो पकवाना तो होगा। मेरी टांगों में इतना दम है क्या अब? और ऊपर से साहबज़ादे कहते हैं, "अम्मा, देख के काम करियो, अब चूल्हा-वूल्हा इस रसोई में नहीं जलेगा। नहीं तो उजली दीवारें काले कौए जैसी निकल आयेंगी।" अब देखो इनकी अंगरेज़ियत। मैं पूछती हूं कि घर में नहीं तो क्या सड़क पर जाकर चूल्हा जलेगा। हांऽ, नहीं तो, अब कल आकर कहेगा, "अम्मा, घर के कायदे-कानून होंगे। संभल कर उठना, संभल कर बैठना। कहीं तड़क न जाये मेरे खून-पसीने का बनवाया यह भवन।" "हुंह। इस रघु को तो वे देख लेंगी।"

और अम्मा सचमुच उठ बैठीं।

यही तो थी अम्माजी की सारी मुसीबत की जड़। वे कल्पना के घोड़े वो तेजी से दौड़ातीं कि उसी के साथ खो जातीं। कल्पना उनके लिए यथार्थ बन जाती। अब देखो, घर में हजारों काम पड़े हैं और वे यूं ही बेमतलब रघु की बुद्धि को ठिकाने लगाने की सोच रही हैं।

इतने में बड़ा बेटा कृष्ण जाता दिखायी दिया।

"अरे कृष्ण बेटे, कल के लिए फूलों का जबर्दस्त इन्तजाम होना चाहिये। गमले अभी से मंगवा दे, मैं सब सजवा दूंगी।"

"वाह अम्मा वाह, देख कर आओ जरा अपना नया घर। फूलों की खुशबू, उनकी सुन्दरता बांध लेगी तुम्हें। तुम्हारा कृष्ण कोई दीर्घसूत्री नहीं, आज का काम आज ही कर लेता है।"

"आहो जी, तेरा बस चले तो आने वाले कल का काम बीते कल ही कर ले। और अब कहां चला?"

"यूं ही जरा समुद्र-तट पर घूम आऊं।"

"क्या बीच दोपहरी में! और घर में काम-धाम नहीं है क्या? हजार काम हैं, पण्डितजी का इन्तजाम करना है, सफाई करवानी है। कितने ही काम हैं।"

"अरे अम्मा, वह सब रघु देख लेगा। जानती हो एक काम में दो आदमियों को नहीं पड़ना चाहिये। खुद ही तो हमेशा कहती रहती हो, "मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना।"

"हां, हां चला है मुझे उपदेश देने। रघु ही घर में रह भी लेगा।" अम्मा ने झूठा गुस्सा दिखलाया।

और कृष्ण अपनी मस्ती में गुनगुनाता हुआ, मुस्कुराता हुआ निकल गया।

अम्माजी की एक साध पूरी हो रही थी। अपना घर बन गया था और गृह-प्रवेश के साथ-साथ यज्ञ का आयोजन था। आधुनिक होते हुए भी बेटे-बेटियों ने मां की इस बात को सिर आंखों लगाया। अम्माजी की खुशी के क्या कहने। अब नये घर की अपेक्षा उन्हें होने वाले हवन के लिए अधिक प्रसन्नता थी। सोचने लगीं, "सारा घर शुद्ध हो जायेगा। कितना अच्छा शुभारम्भ होगा।"

अम्मा की रात आंखों में कटी। सुबह तीन बजे से ही हवनकुण्ड सजा दिया।

हवन शुरू हुआ। पुरोहितजी ने स्वस्तिवाचन शुरू किया। अम्माजी गद्‌गद हो उठीं। वे साथ-ही-साथ उन मन्त्रों का अर्थ भी समझना चाहती थीं। कान लगा कर सुनने की कोशिश भी उनकी असफल रही। मन्त्र तो संस्कृत में बोले जाते हैं। अचानक पण्डितजी जरा-सा रुके तो अम्माजी ने हाथ जोड़ कर विनीत भाव से कहा—"महाराज, हम अनपढ़ों के लिए मन्त्र का मोटा-मोटा अर्थ भी समझाने की कृपा कीजिए।" पण्डितजी ने मुस्कुरा कर हामी भरी और मन्त्र पढ़ने के साथ-साथ भाव समझाने लगे। अम्माजी अपनी ही दुनिया में खोयी थीं, आस-पास से बेखबर, बेहोश। उनके शिक्षित बेटे-बेटियां, हवनादि से उदासीन उसके समाप्त होने की बाट जोह रहे थे लेकिन अम्मा तो अपनी भी सुध-बुध गंवा बैठी थीं। पुरोहितजी का स्वर सुनायी दिया : *इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो...*

और उन्होंने इसका भावार्थ यूं समझाया : इस मकान में सूर्य, वायु, इन्द्र आदि देवों का निवास हो...

अम्मा मन ही मन खुशी से बौरा गयीं। अच्छा, तो आज मेरे घर देवता उतरेंगे। हां। मन में गांठ बांध ली, देवताओं के दर्शन किये बिना पानी की एक बूंद भी मुंह में नहीं जायेगी, अन्न का एक कण भी जीभ पर नहीं रखूंगी।

उसके बाद अम्माजी की आंखें स्वतः मुंद गयीं। पण्डितजी की आवाज दूर से आती हुई क्षीण होती गयी। उनके मन में एक ही निश्चय था, अटल निश्चय—देवताओं का उतरना। वे उसी प्रार्थना में डूब गयीं।

अम्मा हड़बड़ा कर चेतना में लौटीं, देखा रघु उनका कन्धा झिंझोड़ कर कह रहा है—"अम्मा, अम्मा क्या हुआ तुम्हें? कब से बुत बनी बैठी हो।"

"हं, हं, क्या हुआ बेटे?" अम्मा ने अचकचा कर पूछा।

"अरे देखो तो, दूर-दूर से लोग तुम्हारे घर की सराहना करने आ रहे हैं और तुम उनकी अगवानी न करके यहां समाधि में बैठी हो। चलो, चलो, पुरोहितजी भी दक्षिणा की प्रतीक्षा में होंगे।"

अम्मा कुछ सुध में आयीं। देखा, सचमुच हवन समाप्त हुए देर हो

गयी थी, वेदी से धुंआ उठ रहा था। बोलीं—"देख बेटे, तू ही पुरोहितजी को दान-दक्षिणा दे दे और अब तो धूप निकल आयी है, देखने वाले भी ज्यादा न आयेंगे। नीचे का बड़ा दरवाजा बन्द कर दे और तुम सब आकर नीचे शान्ति से बैठ जाओ। आज हमारे घर प्रभु उतरेंगे।"

रघु फटी-फटी आंखें कर सिर पकड़ कर खड़ा हो गया। अम्मा को फिर से झकझोर कर बोला—"क्या हुआ अम्मा तुम्हें? ये कौन से भगवान् की बातें कर रही हो?"

"अरे सुना नहीं, पण्डितजी ने स्वयं देवताओं के उतरने की बात कही और मैंने तो निश्चय कर लिया है कि जब तक देवगण इस भवन पर नहीं उतरेंगे मैं अन्न-जल का एक कण भी ग्रहण नहीं करूंगी।" अम्मा ने अपना फैसला सुना दिया।

"सचमुच सठिया गयी, अम्मा तुम। मन्त्र की बात गांठ बांध ली! अरे, ऐसा भी क्या होता है!" रघु ने जरा खीज-भरे स्वर में कहा : "चलूं, मैं तो पण्डितजी का कर्ज चुकाऊं और तुम इस पागलपन को छोड़ कर अतिथियों को देखो।"

"हुंह। परम अतिथि की अवहेलना कर इन अतिथियों का सत्कार करूं। पहले अपने अतिथियों की अगवानी करूं फिर तुम्हारे अतिथियों को देखा जायेगा।" अम्मा बोल उठीं।

रघु मुंह फेर, बात अनसुनी कर, लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ नीचे उतर गया।

शाम हो चली। घर के बच्चे-बड़े सब अम्मा को खाने के लिए मनाने आये, लेकिन वे अपनी बात से सूई की नोक बराबर न टलीं। "पहले देवगण पधारेंगे फिर मेरे मुंह में अन्न-जल जायेगा।"

रघु नाराज होकर दोबारा कमरे में न गया। कृष्ण ने अपनी चाल खेली—"अम्मा दकियानूसी हो तुम। अरे, मन चंगा तो कठौती में गंगा। मन में राम तो अग-जग में राम। तुम चाहती हो देवता सशरीर यहां उतरें?"

"हां, हां, पण्डितजी यही कह रहे थे। बेटा, वे उतरेंगे, जरूर उतरेंगे।"

"अम्मा, पण्डितजी अर्थ का अनर्थ बता दें उसमें भी तुम विश्वास कर लो। कभी देखा या सुना है भगवान् को सशरीर उतरते?"

अम्मा चौंक उठीं कृष्ण की नादानी पर। "क्या हमारे रामायण और महाभारत साक्षी नहीं हैं? क्या राम और कृष्ण धरती पर नहीं उतरे थे? जब-जब धर्म की ग्लानि हुई, अधर्म ने सिर उठाया, तब-तब भगवान् ने अवतार नहीं लिया क्या? बेटे, तेरा तो नाम ही मैंने कृष्ण रखा है, अपनी मां के लिए लजावा बन गया आज तू।"

"इसीलिए तो कहता हूं कि तुम दकियानूसी हो। "कृष्ण ने भी हार न मानी।" अरे वह युग गया। जिस युग में हो उसके साथ-साथ चलो। आज विज्ञान का युग है। विज्ञान तुम्हारे पुराणपन्थी विचारों को नहीं मानता। जानती हो।"

"नहीं मानता, न माने, मेरी बला से। मैं तुम्हारे विज्ञान के पांव पखारने नहीं जा रही। अपनी आत्मा की बात पर विश्वास करूं कि तुम्हारे उस बेसिर पैरवाले विज्ञान पर।"

विज्ञानप्रेमी कृष्ण मां की इस बेतुकी बात को न निगल सका और मुंह फेर कर चला गया।

घर-भर के लोग अन्त में इसी फैसले पर आये कि अम्मा को अपनी बात से डिगाना हिमालय को हिलाने जैसी मूर्खता है इसलिए ज्यादा अच्छा है कि इस ज्वार के उतरने तक उन्हें उनकी हालत पर छोड़ दिया जाये।

रात्रि के पहले की निस्तब्धता घर-भर में छायी थी।

"रघु, कृष्ण, लक्ष्मी, राधा! अरे सब जने नीचे आओ।" अचानक अन्धकार को बिजली की तेजी से चीरती हुई आवाज सबके कानों को भेद गयी।

सारे घर के लोग बदहवास नीचे दौड़ पड़े। "क्या हुआ अम्मा को? क्या कर बैठीं वे!" सबके मनों में यही प्रश्न बवण्डर बन कर उठा।

पगलायी अम्मा आंसुओं से स्नान कर चुकी थीं। मुख का भाव किसी अपूर्व-अश्रुत लोक का था और वहां उपस्थित हर एक का रोम-रोम तक चकित रह गया। क्या यह सत्य है? नहीं, नहीं मिथ्याभास। फिर भी सबके मस्तक स्वतः ही झुक गये।

अम्मा संवेग में गद्‌गद वाणी से बोल उठीं—"जानती थी, प्रभु जानती थी। मैं प्राण त्याग देती लेकिन तुम्हारे उतरे बगैर मुंह में अन्न न छुआती। लाज रख ली प्रभु, मेरी लाज रख ली। नहीं कहा था बेटो, प्रभु इस दुखिया

की प्रार्थना को नहीं ठुकरायेंगे।"

हर एक हतप्रभ। "क्या ऐसा भी होता है?" लेकिन सबने कुछ न कुछ तो अनुभव किया ही!!

तभी अम्मा की आवाज सुनायी दी, "अब कहीं नहीं जा सकोगे देवगण, यहीं मेरे इस भवन में रहोगे।"

क्या अम्मा सचमुच सठिया गयीं? सबने आंखों-ही-आंखों में एक-दूसरे से पूछा। और सब देवों को पुनः नमस्कार कर धीरे-धीरे ऊपर चले गये। मन-ही-मन सोच रहे थे कि सचमुच देवता यहां टिक गये तो हमारे मकान का क्या होगा, हम कहां जायेंगे?

देवगण मन्द-मन्द मुस्करा दिये। सारी रात अम्मा देवताओं की वन्दना और उनसे वार्तालाप करती रहीं।

"उठो, अम्मा उठो।" श्रीकृष्ण की धीर-गम्भीर वाणी ने अम्मा के हृदय का स्पर्श किया।

वे अतीत से वर्तमान में लौट आयी थीं। निर्निमेष अबूझी-सी देवताओं को ताकने लगीं।

सभी देवी-देवताओं के कर कमल आशीर्वाद की मुद्रा में उठ गये और सारे जग में यह स्वर सुनायी दिया—"उठो अम्मा। अभी तक वह मुहूर्त आया नहीं है, लेकिन धीरज धरो, शीघ्र ही आने वाला है जब तुम सबकी उठती हुई अभीप्सा हमें यहां हमेशा के लिए ले आयेगी। तब तक धीरज धरो। अपने घर में और घर में रहने वालों के हृदय में इस मन्त्र का बीज रोप दो : "यह नया घर भागवत उपलब्धि के लिए तीव्र अभीप्सा से भरा रहे और इसके उत्तर में भागवत उपस्थिति यहां बनी रहेगी।"

अभी और प्रतीक्षा करो।

देवगण अन्तर्धान हो गये। प्रणाम करती हुई अम्मा के मुंह से सहसा ये शब्द फूट पड़े—"वर दो, आनन्द की यह अद्‌भुत सृष्टि, जो धरती पर उतरने के लिए हमारी पुकार की प्रतीक्षा में हमारे द्वारे खड़ी है, शीघ्र ही अवतरित हो सके।"

अग-जग मुखरित हो उठा।

—वन्दना